

अध्याय 2: सांख्य योग (गीता का सार)

SHRIMAD BHAGWAD GEETA

CHAPTER TWO



VIKRAM THAKUR

अध्याय 2: सांख्य योग (गीता का सार)



SHRIMAD BHAGWAD GEETA

CHAPTER TWO

(A Shloka-wise Simplified Explanation in Hindi)

— आत्मा, कर्म, और ज्ञान की गहराई —

✍ Author: Vikram Thakur

“यह आत्मा न कभी जन्म लेती है, न कभी मरती है।
यह न कभी उत्पन्न होती है और न ही इसका अंत होता है।
यह अजन्मा, शाश्वत, नित्य और अविनाशी है।”

— श्रीमद्भगवद्गीता 2.20

✨ इस पुस्तक के माध्यम से आप जानेंगे:

- ☑ आत्मा की अमरता का रहस्य
- ☑ कर्म और धर्म का सही स्वरूप
- ☑ मन और मोह के पार जाने का मार्ग
- ☑ शांति और विवेक की जीवन में उपयोगिता

ॐ यह केवल एक ग्रंथ की व्याख्या नहीं,
बल्कि आत्मा की यात्रा का आरंभ है...

© 2025 Vikram Thakur

सभी अधिकार सुरक्षित (All Rights Reserved)

✍ लेखक परिचय

मैं **Vikram Thakur**, एक साधारण जीवन जीने वाला साधक हूँ, जो आत्मा, धर्म और आध्यात्मिकता की गहराई को जानने का प्रयास कर रहा है।

श्रीमद्भगवद्गीता ने मेरे जीवन को नई दृष्टि, नई दिशा और एक स्थायी उद्देश्य प्रदान किया है।

इस पुस्तक को लिखने का मेरा उद्देश्य केवल शास्त्र का अर्थ समझाना नहीं है,

बल्कि उस दिव्य ज्ञान को आज के युग के अनुसार,

युवाओं, विद्यार्थियों, गृहस्थों और हर जिज्ञासु मन तक पहुँचना है —

जो जीवन के मूल प्रश्नों से जूझ रहे हैं।

"मैं कौन हूँ?", "मृत्यु क्या है?", "कर्तव्य क्या है?", और "आत्मा अमर कैसे है?"

— जैसे गहन प्रश्नों का उत्तर हमें गीता के माध्यम से मिलता है।

इस पुस्तक में मैंने श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय को

हर श्लोक के अनुसार सरल हिंदी में,

आधुनिक दृष्टिकोण और उदाहरणों के साथ समझाने का प्रयास किया है।

मैं चाहता हूँ कि यह पुस्तक केवल एक ग्रंथ की व्याख्या न बनकर,

हर पाठक की अंतरात्मा की यात्रा का एक साधन बने।

समर्पण

मैं इस संपूर्ण पुस्तक को भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित करता हूँ —

जिनकी वाणी कालातीत है, और जिनका ज्ञान समस्त मानवता को आलोकित करता है।

साथ ही, मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ:

- अपने माता-पिता को, जिन्होंने मुझे प्रेम और संस्कार दिए,
- अपने गुरुजनों को, जिनकी प्रेरणा से मैं ज्ञान की ओर अग्रसर हुआ,
- और उन सभी पाठकों को, जो सत्य की खोज में इस आध्यात्मिक यात्रा पर निकले हैं।



विक्रम ठाकुर

(लेखक)

भगवद गीता - अध्याय 2 : सार और श्लोकों की सूची

श्लोक 2.1 – अर्जुन का मानसिक संघर्ष और विषाद

श्लोक 2.2 – श्रीकृष्ण की पहली शिक्षा: कर्तव्य का महत्व

श्लोक 2.3 – शोक से ऊपर उठो, धर्म का पालन करो

श्लोक 2.4 – अर्जुन की शंका और श्रीकृष्ण की समझाइश

श्लोक 2.5 – धर्म का पालन करना क्यों आवश्यक है

श्लोक 2.6 – जीवन-मरण का चक्र और आत्मा का अमरत्व

श्लोक 2.7 – अर्जुन की पुनः शंका और ध्यान की आवश्यकता

श्लोक 2.8 – ज्ञान और कर्म का महत्व

श्लोक 2.9 – संकल्प और आत्मविश्वास की बात

श्लोक 2.10 – अर्जुन की आत्मा की स्थिति

श्लोक 2.11 – अज्ञानता में शोक करना: असली ज्ञानी क्या करता है?

श्लोक 2.12 – आत्मा अमर है, शरीर नष्ट होता है

श्लोक 2.13 – जीवन-मरण की सच्चाई और स्थिरता

श्लोक 2.14 – सुख-दुख के क्षणिक स्वभाव को समझना

श्लोक 2.15 – मन की स्थिरता का रहस्य

श्लोक 2.16 – सत्य और मिथ्या का भेद

श्लोक 2.17 – आत्मा नष्ट नहीं होती

श्लोक 2.18 – आत्मा शाश्वत और अविनाशी है

श्लोक 2.19 – कर्मयोग की शुरुआत

श्लोक 2.20 – शरीर और आत्मा का भेद

श्लोक 2.21 – आत्मा कभी नष्ट नहीं होती

श्लोक 2.22 – मृत्यु के बाद का सच

श्लोक 2.23 – शरीर नष्ट होता है, आत्मा अमर है

श्लोक 2.24 – आत्मा का स्वरूप

श्लोक 2.25 – आत्मा का संकल्प

श्लोक 2.26 – अनंत और अमर आत्मा

श्लोक 2.27 – जीव और शरीर का संबंध

श्लोक 2.28 – बुद्धिमान व्यक्ति का दृष्टिकोण

श्लोक 2.29 – सम्पूर्ण सृष्टि की आत्मा में एकता

श्लोक 2.30 – शरीर के विभिन्न रूपों का ज्ञान

श्लोक 2.31 – धर्म और कर्तव्य का महत्व

श्लोक 2.32 – वीरता का पाठ

श्लोक 2.33 – शोक और मोह से उबरना

श्लोक 2.34 – बुद्धि और विवेक

श्लोक 2.35 – उचित निर्णय लेना

श्लोक 2.36 – वीरता के लिए प्रेरणा

श्लोक 2.37 – युद्ध में साहस

श्लोक 2.38 – शत्रु पर विजय

श्लोक 2.39 – कर्तव्य पर अडिग रहना

श्लोक 2.40 – स्थिर मन और स्थिर बुद्धि

श्लोक 2.41 – बोध और ज्ञान

श्लोक 2.42 – दोष और भटकाव से बचना

श्लोक 2.43 – भक्ति और कर्म का मेल

श्लोक 2.44 – आत्मविश्वास बढ़ाना

श्लोक 2.45 – सत्य का मार्ग

श्लोक 2.46 – ध्यान और समाधि

श्लोक 2.47 – कर्मयोग का प्रसिद्ध उपदेश

श्लोक 2.48 – फल की इच्छा छोड़ना

श्लोक 2.49 – बुद्धिमान कर्मी की विशेषता

श्लोक 2.50 – योग और कर्म का मेल

श्लोक 2.51 – मन का नियंत्रण

श्लोक 2.52 – आत्मा की स्थिति

श्लोक 2.53 – मन की चंचलता

श्लोक 2.54 – मन का शांत होना

श्लोक 2.55 – योग में प्रगति

श्लोक 2.56 – बुद्धिमान की दृष्टि

श्लोक 2.57 – संतुलन और स्थिरता

श्लोक 2.58 – ज्ञान और आत्मा की स्थिति

श्लोक 2.59 – मानसिक स्थिरता

श्लोक 2.60 – मन का शाश्वत रूप

श्लोक 2.61 – चिन्तन और ज्ञान

श्लोक 2.62 – स्मृति और ध्यान

श्लोक 2.63 – वासनाओं से मुक्त होना

श्लोक 2.64 – बुद्धि का नियंत्रण

श्लोक 2.65 – मन का परिशुद्धि

श्लोक 2.66 – बुद्धिमान का जीवन

श्लोक 2.67 – आत्मा का स्वरूप

श्लोक 2.68 – ज्ञान का महत्व

श्लोक 2.69 – स्थिर मन की प्राप्ति

श्लोक 2.70 – स्थिरता का अनुभव

श्लोक 2.71 – सम्पूर्ण निश्चय

श्लोक 2.72 – आध्यात्मिक ज्ञान और सांसारिक धन का त्याग



👉 यह अध्याय भगवद गीता का सबसे महत्वपूर्ण अध्याय है।

👉 इसमें श्रीकृष्ण अर्जुन के मोह को दूर करने के लिए आत्मा, धर्म, कर्म और ज्ञान का रहस्य समझाते हैं।

👉 यह अध्याय संपूर्ण गीता का सार भी कहा जाता है।

💡 मुख्य विषयः

- 1 अर्जुन का विषाद (अध्याय 1 का निष्कर्ष)
- 2 आत्मा का ज्ञान (हम शरीर नहीं, आत्मा हैं)
- 3 स्थितप्रज्ञ (जो कभी विचलित नहीं होता)

4 कर्मयोग (स्वार्थरहित कर्म)

► श्लोक 2.1 (श्रीकृष्ण का अर्जुन को संबोधन)

संस्कृत श्लोकः

श्री भगवानुवाच ।

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ 1 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

भगवान् श्रीकृष्ण बोले:

हे अर्जुन! इस कठिन समय में तुझे यह मोह (दुर्बलता) कहाँ से प्राप्त हो गया? यह महान आत्माओं को शोभा नहीं देता, न ही इससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है और न ही यह कीर्ति बढ़ाने वाला है।

◆ गहरी व्याख्या:

👉 अर्जुन युद्ध करने से हिचकिचा रहा था, क्योंकि उसे अपने ही भाइयों और गुरुओं के विरुद्ध लड़ना पड़ रहा था।

👉 वह भावनात्मक रूप से कमजोर हो गया था और धर्म व कर्तव्य से भटक रहा था।

👉 श्रीकृष्ण उसे झाकझोरते हैं और बताते हैं कि यह भावनात्मक कमजोरी तुझे शोभा नहीं देती।

👉 वे इसे "अनार्यजुष्टम्" कहते हैं, अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों के योग्य नहीं।

◆ यह हमें क्या सिखाता है?

✓ जीवन में जब भी कठिन समय आए, भावनाओं में बहकर कर्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिए।

✓ जो व्यक्ति केवल भावनाओं से निर्णय लेता है, वह अपने जीवन में कभी सफल नहीं हो सकता।

✓ बल्कि बुद्धि और धर्म का सहारा लेकर कर्म करना चाहिए।

◆ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

✓ 1) कठिन परिस्थितियों में धैर्य बनाए रखना

- जब भी हम मुश्किल में होते हैं, हम हिम्मत हारने लगते हैं।
- लेकिन श्रीकृष्ण कहते हैं कि इससे कोई फायदा नहीं।
- हमें साहस और बुद्धिमानी से निर्णय लेना चाहिए।

2) भावनाओं के बजाय विवेक से निर्णय लेना

- कई बार हम क्रोध, भय, दुख या मोह में आकर गलत फैसले ले लेते हैं।
- लेकिन सच्चा नेता वही है जो बुद्धिमानी से सोचे और सही निर्णय ले।

3) कर्तव्य से पीछे न हटना

- अगर हम किसी मुश्किल काम में फँस जाएँ, तो पीछे नहीं हटना चाहिए।
- डर और मोह हमें कमज़ोर बना सकते हैं, लेकिन हमें उनसे ऊपर उठना होगा।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ कठिन समय में हिम्मत नहीं हारनी चाहिए।
- ✓ भावनाओं से नहीं, बुद्धि से निर्णय लेना चाहिए।
- ✓ कर्तव्य और धर्म से पीछे हटना अनार्य (श्रेष्ठ पुरुषों के योग्य नहीं) है।
- ✓ जो अपने डर और मोह से ऊपर उठ जाता है, वही महान बनता है।

► श्लोक 2.2 (श्रीकृष्ण का अर्जुन को फटकारना)

संस्कृत श्लोक:

श्री भगवानुवाच ।
क्लैब्वं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वयुपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ 2 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

भगवान् श्रीकृष्ण बोले:

हे अर्जुन! इस कायरता को मत अपनाओ, यह तुझे शोभा नहीं देती। यह तुच्छ और हृदय की दुर्बलता है। इसे त्यागो और खड़े हो जाओ, हे परन्तप (शत्रुओं का दमन करने वाले)!

◆ गहरी व्याख्या:

- 👉 अर्जुन युद्ध से भागना चाहता था क्योंकि उसे अपने ही संबंधियों के खिलाफ युद्ध करना था।
- 👉 लेकिन श्रीकृष्ण उसे फटकारते हैं और कहते हैं कि "यह कायरता तुझे शोभा नहीं देती!"

👉 वे अर्जुन को "परंतप" कहकर याद दिलाते हैं कि तू तो महान योद्धा है, तू कायर कैसे हो सकता है?

👉 श्रीकृष्ण यहाँ स्पष्ट करते हैं कि "कायरता" सबसे बड़ा दोष है।

👉 हृदय की दुर्बलता (emotional weakness) त्यागकर कर्तव्यपथ पर आगे बढ़ो!

◆ यह हमें क्या सिखाता है?

- ✓ कायरता से कोई समस्या हल नहीं होती, हमें उसका सामना करना चाहिए।
 - ✓ जो व्यक्ति अपने मनोबल को कमजोर कर लेता है, वह अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता।
 - ✓ हर कठिनाई में डटकर खड़े होने वाले लोग ही इतिहास रचते हैं।
 - ✓ भावनाओं में बहकर गलत निर्णय नहीं लेना चाहिए, बल्कि साहस और विवेक से काम करना चाहिए।
-

◆ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

✓ 1) कठिनाइयों से भागने की बजाय उनका सामना करें

- जीवन में कभी-कभी ऐसी स्थितियाँ आती हैं जब हम घबरा जाते हैं।
- लेकिन श्रीकृष्ण सिखाते हैं कि कायरता छोड़ो और साहस से आगे बढ़ो।

✓ 2) आत्मविश्वास बनाए रखें

- अगर हम नौकरी, परीक्षा, व्यवसाय या रिश्तों में हार मान लें, तो सफलता नहीं मिलेगी।
- हमें हिम्मत से काम लेना होगा।

✓ 3) भावनात्मक कमजोरी को छोड़कर सही निर्णय लें

- कई बार हम भावनाओं के कारण गलत फैसले लेते हैं।
- लेकिन सच्ची सफलता तब मिलती है जब हम बुद्धि और धैर्य से आगे बढ़ते हैं।

✓ 4) डर को त्यागकर बड़े निर्णय लें

- डर और संकोच सफलता के सबसे बड़े शत्रु हैं।
 - जो अपने डर पर काबू पा लेता है, वही महान बनता है।
-

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

✓ डर और कायरता को छोड़ देना चाहिए।

✓ मुश्किल परिस्थितियों में घबराने के बजाय उनका सामना करना चाहिए।

- ✓ हृदय की दुर्बलता को त्यागकर आत्मविश्वास बनाए रखना चाहिए।
- ✓ साहस और धैर्य से ही विजय मिलती है।

► श्लोक 2.3 (श्रीकृष्ण का अर्जुन को और समझाना)

संस्कृत श्लोकः

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ 3 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

हे अर्जुन! यह मोह और कायरता तुझमें इस कठिन समय में कहाँ से आ गई? यह अनार्यों (महान व्यक्तियों के विपरीत आचरण करने वालों) के आचरण जैसा है। यह न तो स्वर्ग प्राप्ति के योग्य है और न ही तुझे यश (कीर्ति) दिलाने वाला है।

◆ गहरी व्याख्याः

- 👉 श्रीकृष्ण यहाँ अर्जुन को कड़ी फटकार लगा रहे हैं।
 - 👉 वे पूछते हैं— "हे अर्जुन! तू इतना महान योद्धा है, फिर यह कायरता तुझमें कैसे आ गई?"
 - 👉 यह "अनार्य-जुष्टम्" है, यानी यह महान योद्धाओं और सच्चे वीरों का आचरण नहीं है।
 - 👉 यह अस्वर्ग्यम् है, यानी जो धर्म के मार्ग से दूर ले जाता है और स्वर्ग प्राप्ति के अनुकूल नहीं है।
 - 👉 यह अकीर्तिकरम् है, यानी इससे अर्जुन की बदनामी होगी।
 - 💡 श्रीकृष्ण याद दिलाते हैं कि अगर अर्जुन अपने धर्म से भागेगा, तो उसे यश नहीं अपयश मिलेगा।
-

◆ यह हमें क्या सिखाता है?

- ✓ मुश्किल समय में मानसिक रूप से मजबूत रहना चाहिए।
 - ✓ अपने कर्तव्य से पीछे हटना अनुचित है।
 - ✓ जो व्यक्ति अपने लक्ष्य से भटक जाता है, उसे जीवन में यश नहीं, बल्कि अपयश मिलता है।
 - ✓ धर्म और कर्तव्य का पालन करने वाले व्यक्ति को ही सच्ची सफलता मिलती है।
-

◆ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

- ✓ 1) चुनौतियों से घबराने के बजाय उनका सामना करें

- जीवन में कई बार ऐसी स्थितियाँ आती हैं जब हम घबरा जाते हैं।
- लेकिन श्रीकृष्ण सिखाते हैं कि हमें परिस्थितियों से लड़ना चाहिए, न कि भागना चाहिए।

 2) कर्तव्य से भागना अपयश का कारण बनता है

- अगर कोई अपनी जिम्मेदारियों को छोड़कर भागता है, तो लोग उसे कायर कहते हैं।
- जिम्मेदारी निभाने वाला व्यक्ति ही सम्मान पाता है।

 3) अपने डर को छोड़कर आत्मविश्वास से आगे बढ़ें

- डर और संकोच सफलता के सबसे बड़े शत्रु हैं।
- जो अपने डर पर काढ़ पा लेता है, वही महान बनता है।

 4) गलत संगति और कमजोर मानसिकता से बचें

- "अनार्य-जुष्टम्" का अर्थ है कि यह महान पुरुषों के आचरण के विपरीत है।
- हमें हमेशा अच्छे विचारों और संगति में रहना चाहिए।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ हमें परिस्थितियों से भागना नहीं चाहिए, बल्कि उनका सामना करना चाहिए।
- ✓ कर्तव्य छोड़ना न तो धर्मसंगत है और न ही यह हमें यश दिला सकता है।
- ✓ महान व्यक्ति वही होता है जो कठिन परिस्थितियों में भी सही निर्णय लेता है।
- ✓ साहस और आत्मविश्वास ही मनुष्य को सच्ची सफलता दिलाते हैं।

► श्लोक 2.4 (अर्जुन का संशय)

संस्कृत श्लोक:

अर्जुन उवाच —

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदनं |
इषुभिः प्रतियोत्प्यामि पूजार्हावरिसूदनं || 4 ||

◆ हिंदी अनुवाद:

अर्जुन बोले— हे मधुसूदन! मैं युद्ध में भीष्म पितामह और आचार्य द्रोण के विरुद्ध बाण कैसे चला सकता हूँ? वे तो मेरे पूजनीय हैं, हे अरिसूदन (शत्रुओं का नाश करने वाले)!

◆ गहरी व्याख्या:

- 👉 अर्जुन का मन अभी भी मोह और भावनाओं में उलझा हुआ है।
- 👉 वह भीष्म पितामह और गुरु द्रोण के प्रति श्रद्धा महसूस करता है और सोचता है— "जो मेरे पूजनीय हैं, उनके खिलाफ मैं युद्ध कैसे कर सकता हूँ?"
- 👉 "मधुसूदन" और "अरिसूदन" शब्दों का प्रयोग यह दर्शाता है कि अर्जुन श्रीकृष्ण को याद दिला रहा है कि वे महान योद्धाओं को हराने वाले हैं, लेकिन अर्जुन खुद अपने ही गुरु और पितामह के विरुद्ध युद्ध नहीं कर सकता।
- 💡 यह श्लोक अर्जुन के अंदर के मानसिक द्वंद्व (conflict) को दर्शाता है।

◆ यह हमें क्या सिखाता है?

- ✓ कई बार हमें जीवन में कठिन निर्णय लेने पड़ते हैं, जो भावनाओं के विपरीत होते हैं।
- ✓ कर्तव्य और भावनाओं के बीच संघर्ष सबसे कठिन होता है।
- ✓ सही और गलत का निर्णय केवल भावनाओं से नहीं, बल्कि धर्म और कर्तव्य के आधार पर करना चाहिए।
- ✓ कभी-कभी प्रियजनों के खिलाफ भी सत्य और न्याय के लिए खड़ा होना पड़ता है।

◆ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

- ✓ 1) सही निर्णय के लिए भावनाओं से ऊपर उठना जरूरी है
 - कई बार हमें अपने परिवार, दोस्तों या करीबी लोगों के खिलाफ भी सच्चाई का साथ देना पड़ता है।
 - अगर कोई करीबी व्यक्ति गलत कर रहा है, तो सिर्फ भावनाओं में बहकर उसका समर्थन नहीं करना चाहिए।
- ✓ 2) धर्म और कर्तव्य का पालन सबसे महत्वपूर्ण है
 - अर्जुन की तरह, हमें भी कभी अपने जीवन में कठिन निर्णय लेने पड़ते हैं।
 - हमें यह सोचना चाहिए कि हमारे निर्णय धर्म और न्याय के अनुकूल हैं या नहीं।
- ✓ 3) मानसिक द्वंद्व से बाहर निकलना जरूरी है
 - जब हम किसी बड़े फैसले को लेकर उलझन में होते हैं, तो हमें धैर्य और सही मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है।
 - गलत फैसले से बचने के लिए हमें ज्ञान और विवेक से काम लेना चाहिए।
- ✓ 4) मुश्किल परिस्थितियों में सही मार्गदर्शन लें
 - अर्जुन को श्रीकृष्ण का मार्गदर्शन मिला, जिससे वे सही निर्णय ले पाए।
 - हमें भी अपने जीवन में अच्छे गुरु, मार्गदर्शक या सही ज्ञान की आवश्यकता होती है।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ भावनाओं में बहकर गलत निर्णय नहीं लेना चाहिए।
- ✓ कर्तव्य और धर्म को प्राथमिकता देना सबसे जरूरी है।
- ✓ कभी-कभी कठिन परिस्थितियों में सही मार्गदर्शन लेना आवश्यक होता है।
- ✓ परिवार या प्रियजनों के कारण अन्याय का समर्थन नहीं करना चाहिए।

► श्लोक 2.5 (कर्तव्य बनाम भावनाएँ)

संस्कृत श्लोक:

श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके
हत्वार्थकामांस्तु गुरुनिहैव ।
भुज्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्
अलंकृतं इव मृत्युसमानाः ॥ 5 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

अर्जुन कहते हैं— "हे कृष्ण! इस संसार में भिक्षा मांगकर जीना अधिक अच्छा होगा, बजाय इसके कि मैं उन पूजनीय गुरुजनों को मार डालूँ जो केवल धन और सुख-सुविधाओं के लिए लड़ रहे हैं। अगर मैंने उन्हें मार डाला, तो उनके रक्त से सने हुए सुख मैं कैसे भोग सकता हूँ? ऐसे सुख तो मृत्यु के समान होंगे!"

◆ गहरी व्याख्या:

👉 अर्जुन की मानसिक स्थिति:

- अर्जुन अभी भी कर्तव्य और भावनाओं के बीच उलझा हुआ है।
- उसे लगता है कि अगर वह अपने ही गुरुजनों को मार देगा, तो जो सुख वह पाएगा, वह रक्त से सना हुआ और मृत्यु के समान होगा।
- उसे भिक्षा मांगकर जीना भी अधिक श्रेष्ठ लग रहा है, क्योंकि कम से कम उसमें पाप नहीं होगा।

👉 अर्जुन का अहंकार और मोहः

- अर्जुन अपने गुरुओं को पूजनीय मानता है, लेकिन यह भूल रहा है कि धर्म की रक्षा के लिए युद्ध करना आवश्यक है।

- वह अपने निजी संबंधों और भावनाओं के कारण अपने कर्तव्य से भागने का प्रयास कर रहा है।

 **धर्म और अधर्म के बीच का संघर्षः**

- अर्जुन को लगता है कि यदि उसने युद्ध करके राज्य प्राप्त भी कर लिया, तो वह गुरुओं के रक्त से सना हुआ होगा और उसे भोगना पाप लगेगा।
 - लेकिन वह यह नहीं सोच रहा कि यदि अन्याय का समर्थन किया गया, तो अधर्म और भी बढ़ेगा।
-  इस श्लोक में अर्जुन युद्ध से बचने के लिए एक और तर्क देता है, लेकिन यह केवल भ्रम और मोह के कारण उत्पन्न हुआ है।
-

 **यह हमें क्या सिखाता है?**

- ✓ भावनाओं में बहकर कर्तव्य से भागना सही नहीं है।
 - ✓ कई बार हमें कठिन निर्णय लेने पड़ते हैं, जिनका असर हमारे निजी संबंधों पर भी पड़ सकता है।
 - ✓ कर्तव्य और धर्म के लिए कुछ त्याग आवश्यक होता है।
 - ✓ अगर हम अन्याय के खिलाफ नहीं खड़े हुए, तो यह समाज के लिए और भी घातक हो सकता है।
-

 **आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व**

 **1) कर्तव्य से भागना समाधान नहीं है**

- कई बार हमें अपने कार्यक्षेत्र या परिवार में कठिन निर्णय लेने पड़ते हैं।
- अगर हम सिर्फ भावनाओं में बहकर सही निर्णय नहीं लेते, तो आगे जाकर पछताना पड़ता है।

 **2) सही-गलत का निर्णय बिना मोह के करें**

- अर्जुन गुरुजनों को पूजनीय मानकर युद्ध से बचना चाहता था, लेकिन यह सही नहीं था।
- हमें भी अपनी भावनाओं को कर्तव्य पर हावी नहीं होने देना चाहिए।

 **3) किसी भी चीज़ को सही कारणों से अपनाएँ**

- अर्जुन सोच रहा था कि राज्य प्राप्ति पाप होगा, लेकिन वह यह नहीं सोच रहा कि अगर अधर्मियों को रोका नहीं गया, तो और भी बड़ा संकट आएगा।
- हमें यह देखना चाहिए कि हमारी कार्रवाई से समाज और धर्म को क्या लाभ होगा।

 **4) नैतिकता और जिम्मेदारी का संतुलन बनाए रखें**

- हमें अपने निजी जीवन और सामाजिक जीवन में नैतिकता और जिम्मेदारी का संतुलन बनाए रखना चाहिए।

- अगर किसी का नुकसान करके कुछ प्राप्त हो रहा है, तो हमें सोचना चाहिए कि क्या वह वास्तव में सही है।
-

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ कर्तव्य और भावनाओं में संतुलन बनाए रखना चाहिए।
- ✓ धर्म की रक्षा के लिए सही निर्णय लेना जरूरी है, भले ही वह कठिन हो।
- ✓ सही कार्य करने के लिए मोह से मुक्त होना आवश्यक है।
- ✓ हमेशा दीर्घकालिक दृष्टिकोण से सोचकर निर्णय लें।

► श्लोक 2.6 (धर्मसंकट में उलझा मन)

संस्कृत श्लोक:

न चैतद्विद्धः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषामः
तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ 6 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

अर्जुन कहते हैं— "हम नहीं जानते कि हमारे लिए क्या श्रेष्ठ है—हम युद्ध में विजयी होंगे या वे हमें जीत लेंगे। जिनको मारकर हम जीना भी नहीं चाहते, वे ही धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे सामने युद्धभूमि में खड़े हैं।"

◆ गहरी व्याख्या:

👉 अर्जुन की मानसिक स्थिति:

- अर्जुन पूरी तरह धर्मसंकट (moral dilemma) में उलझा गया है।
- वह यह तय नहीं कर पा रहा कि युद्ध करना सही होगा या युद्ध से बचना।
- उसे यह भी नहीं पता कि अगर वह लड़ेगा तो जीतेगा या हारेगा।
- सबसे बड़ी बात—यदि वह जीत भी गया, तो क्या वह उन लोगों को मारकर जीना चाहेगा जो उसके अपने हैं?

👉 आत्मसंघर्ष और भ्रम:

- अर्जुन युद्ध करने की स्थिति में नहीं है, क्योंकि वह अपनी भावनाओं में फँस गया है।

- उसे यह समझ नहीं आ रहा कि धर्म क्या कहता है और उसकी भावनाएँ क्या कहती हैं।
- यह मानसिक स्थिति हर इंसान के जीवन में कभी न कभी आती है, जब उसे पता ही नहीं होता कि क्या सही है और क्या गलत।

कर्तव्य और मोह के बीच संघर्षः

- अर्जुन अपने कर्तव्य (धर्म) और अपने रिश्तों (मोह) के बीच फँस गया है।
- यदि वह युद्ध करेगा तो उसे अपने ही सगे-संबंधियों को मारना पड़ेगा, जो उसे असहनीय लग रहा है।
- यह परिस्थिति किसी भी इंसान के लिए कठिन हो सकती है।

 भगवान् कृष्ण आगे चलकर अर्जुन को यह सिखाएँगे कि धर्म को हमेशा व्यक्तिगत भावनाओं से ऊपर रखना चाहिए।

◆ यह हमें क्या सिखाता है?

- ✓ जब हम किसी बड़े निर्णय के सामने होते हैं, तो भ्रमित होना स्वाभाविक है।
 - ✓ धर्मसंकट से निकलने के लिए सही ज्ञान और मार्गदर्शन आवश्यक होता है।
 - ✓ हमें यह समझना होगा कि कुछ निर्णय भावनाओं से नहीं, बल्कि तर्क और धर्म से लेने चाहिए।
 - ✓ मोह और कर्तव्य के बीच संतुलन बनाना जरूरी है।
-

◆ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

1) निर्णय लेने की दुविधा

- जब हमें कोई कठिन निर्णय लेना होता है, तो हम भी अर्जुन की तरह असमंजस में पड़ जाते हैं।
- जैसे—करियर में कौन-सा रास्ता सही है? नौकरी छोड़नी चाहिए या नहीं? सही जीवनसाथी कौन है?

2) अपने रिश्तों और कर्तव्यों में संतुलन बनाना

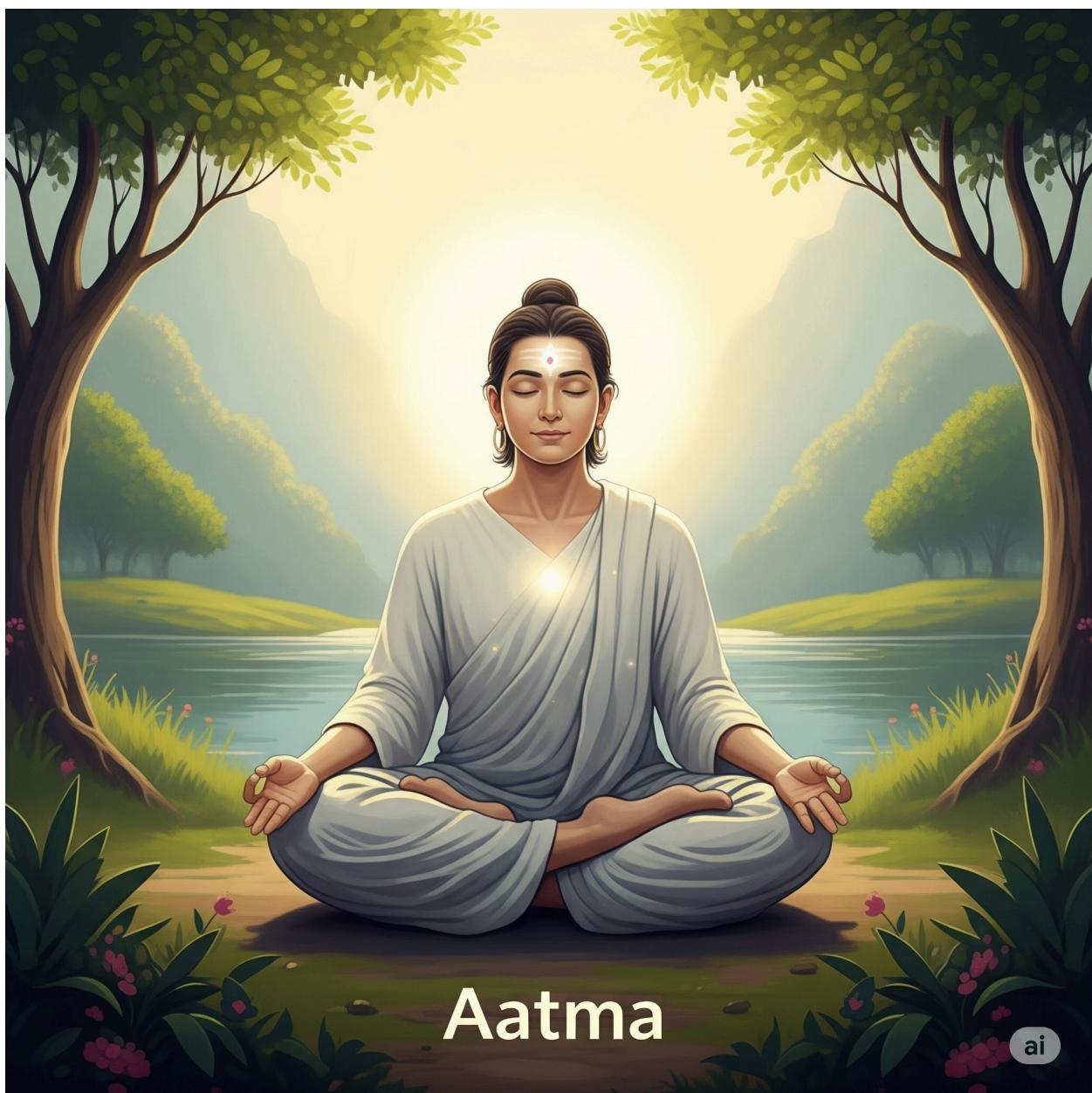
- कई बार हमें अपने रिश्तों की वजह से सही निर्णय लेने में कठिनाई होती है।
- उदाहरण: अगर ऑफिस में आपका कोई करीबी दोस्त गलत काम कर रहा हो, तो क्या आप उसे बचाएँगे या सच बोलेंगे?

3) आत्मसंघर्ष से बाहर निकलना

- जब जीवन में कोई बड़ा निर्णय लेना हो, तो सिर्फ भावनाओं से नहीं, बल्कि ज्ञान और धर्म के आधार पर निर्णय लेना चाहिए।
- अर्जुन को ज्ञान की आवश्यकता थी, इसलिए भगवान् कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ जब जीवन में कठिन निर्णय लेने हों, तो सिर्फ भावनाओं के आधार पर नहीं, बल्कि ज्ञान और धर्म के आधार पर निर्णय लें।
- ✓ अगर हम भ्रम में हैं, तो हमें सही मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है।
- ✓ कर्तव्य को भावनाओं से ऊपर रखना चाहिए, लेकिन बिना सोचे-समझे नहीं।
- ✓ धर्मसंकट का समाधान सही ज्ञान और विवेक से ही संभव है।



► श्लोक 2.7 (शरणागत अर्जुन)

संस्कृत श्लोकः

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः

पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ 7 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

"मैं अपने स्वभाव में कमजोरी और कायरता से भर गया हूँ। मैं धर्म के विषय में भ्रमित हूँ और यह नहीं जानता कि मेरे लिए क्या श्रेष्ठ है। इसलिए मैं तेरा शिष्य बनकर तेरी शरण में आता हूँ। कृपया मुझे निश्चित रूप से जो कल्याणकारी हो, वह बता और मेरा मार्गदर्शन कर।"

◆ गहरी व्याख्या:

👉 1) अर्जुन का आत्मसमर्पण

- इस श्लोक में पहली बार अर्जुन अपने अहंकार को त्यागकर कृष्ण को गुरु रूप में स्वीकार करता है।
- पहले वह श्रीकृष्ण को सिर्फ मित्र और सारथी मान रहा था, लेकिन अब वह **उनकी शरण में** आ गया है।
- यह **आत्मसमर्पण** का प्रतीक है—जब कोई व्यक्ति अपने भ्रम, मोह और अहंकार को छोड़कर सही ज्ञान की ओर बढ़ता है।

👉 2) धर्म के प्रति भ्रमित मनुष्य

- अर्जुन कहता है कि वह धर्म को लेकर पूरी तरह से भ्रमित हो गया है।
- यह सिर्फ अर्जुन की समस्या नहीं है, बल्कि हर व्यक्ति जब जीवन में किसी बड़े फैसले के सामने आता है, तो वह भी इसी तरह दुविधा में होता है।
- अर्जुन की यह स्थिति दर्शाती है कि कभी-कभी मनुष्य की बुद्धि उसके कर्तव्य को पहचानने में असमर्थ हो जाती है।

👉 3) जब व्यक्ति स्वयं निर्णय नहीं ले पाता

- अर्जुन को समझ नहीं आ रहा कि युद्ध करना सही है या अधर्म।
- जीवन में कई बार हमें भी ऐसा ही अनुभव होता है, जब सही और गलत में अंतर समझना कठिन हो जाता है।
- ऐसे समय में हमें किसी ज्ञानी व्यक्ति से मार्गदर्शन लेना चाहिए।

👉 4) गुरु की शरण में जाने का महत्व

- जब अर्जुन को स्वयं कुछ समझ नहीं आया, तो उसने श्रीकृष्ण को अपना गुरु मानकर उनका मार्गदर्शन माँगा।
- यह दिखाता है कि जब हम जीवन में भ्रमित हों, तो हमें किसी योग्य गुरु की शरण में जाना चाहिए।
- अर्जुन का यह समर्पण सत्य की खोज करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रेरणा है।

💡 यह श्लोक हमें सिखाता है कि जब हम जीवन में किसी कठिनाई में हों, तो हमें अपने अहंकार को त्यागकर, सत्य की खोज करनी चाहिए और सही मार्गदर्शन स्वीकार करना चाहिए।

◆ यह हमें क्या सिखाता है?

- ✓ जब भी हम भ्रमित हों, तो हमें किसी ज्ञानी व्यक्ति से सलाह लेनी चाहिए।
- ✓ अहंकार को छोड़कर, ज्ञान की ओर झुकना चाहिए।
- ✓ सिर्फ मित्रता पर्याप्त नहीं होती, यदि मार्गदर्शन चाहिए तो गुरु की शरण में जाना आवश्यक है।
- ✓ सही निर्णय तभी संभव है, जब हम अपनी कमजोरियों को स्वीकार कर लें।

◆ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

✓ 1) जब हमें कठिन निर्णय लेना हो

- जैसे करियर को लेकर—नौकरी करनी चाहिए या बिज़नेस?
- किस क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहिए?
- हमें भी अर्जुन की तरह किसी अनुभवी व्यक्ति से सलाह लेनी चाहिए।

✓ 2) गुरु का महत्व

- अर्जुन अपने अहंकार को छोड़कर श्रीकृष्ण की शरण में आता है।
- आज भी अगर हमें सफलता पानी है, तो हमें एक सही मार्गदर्शक (गुरु) की जरूरत होती है।
- जैसे—यदि हम किसी विषय में कमजोर हैं, तो हमें एक अच्छा शिक्षक चाहिए।

✓ 3) खुद को कमजोर समझने से घबराएँ नहीं

- अर्जुन खुद को कमजोर मानता है, लेकिन कमजोरी स्वीकार करना ही ताकत का पहला कदम है।
- हमें भी अपनी कमजोरियों को स्वीकार करके सही निर्णय लेना चाहिए।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ अगर हमें जीवन में कोई बड़ी समस्या हो, तो हमें अपने अहंकार को त्यागकर किसी ज्ञानी व्यक्ति से मार्गदर्शन लेना चाहिए।
- ✓ जब तक हम अपनी कमजोरियों को स्वीकार नहीं करेंगे, तब तक हम सही मार्ग पर नहीं आ सकते।
- ✓ एक अच्छा गुरु जीवन की दुविधाओं को दूर करने में हमारी मदद कर सकता है।
- ✓ ज्ञान प्राप्त करने के लिए आत्मसमर्पण आवश्यक है।

► श्लोक 2.8 (अर्जुन की गहरी निराशा)

संस्कृत श्लोक:

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपल्मृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्॥ 8 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"मैं ऐसा कोई उपाय नहीं देख रहा हूँ जो मेरे इस दुख को दूर कर सके, जो मेरी इंद्रियों को सुखा रहा है। यदि मैं इस पृथ्वी पर एक महान और समृद्ध राज्य प्राप्त कर लूँ जो बिना शत्रु के हो, या मुझे स्वर्गलोक का भी अधिपत्य मिल जाए, तब भी यह शोक नहीं मिटेगा।"

◆ गहरी व्याख्या:

👉 1) अर्जुन की गहरी निराशा और मानसिक स्थिति

- इस श्लोक में अर्जुन अत्यंत निराशा में डूब चुका है।
- वह कहता है कि कोई भी सांसारिक सुख (राज्य, धन, वैभव) मेरे इस दुख को दूर नहीं कर सकता।
- यह सिर्फ अर्जुन की समस्या नहीं है, बल्कि हर व्यक्ति जीवन में कभी न कभी ऐसा अनुभव करता है।

👉 2) सांसारिक सुखों से शांति नहीं मिलती

- अर्जुन को स्पष्ट हो गया है कि धन, वैभव, सत्ता से शांति नहीं मिलती।
- भले ही उसे एक समृद्ध राज्य या स्वर्ग का अधिपत्य मिल जाए, लेकिन भीतर का दुख दूर नहीं होगा।
- यह हमें भी सोचने पर मजबूर करता है कि क्या बाहरी सुख ही जीवन का अंतिम लक्ष्य है?

👉 3) शारीरिक और मानसिक प्रभाव

- अर्जुन कहता है कि उसका शोक इतना गहरा है कि उसकी इंद्रियाँ (दृष्टि, श्रवण, सोचने की शक्ति) भी क्षीण हो रही हैं।
- जब कोई व्यक्ति भीतर से अशांत होता है, तो उसका शरीर भी प्रभावित होने लगता है।
- चिंता और तनाव से स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है।

👉 4) सांसारिक सफलता का खोखलापन

- अर्जुन के पास धन, वैभव, शक्ति, पराक्रम, वीरता सब कुछ था, लेकिन फिर भी वह दुखी था।
 - यह दिखाता है कि सिर्फ बाहरी सफलता जीवन में पूर्णता नहीं ला सकती।
 - वास्तविक शांति आत्मज्ञान और धर्म के सही मार्ग पर चलने से मिलती है।
- 💡** यह श्लोक हमें सिखाता है कि केवल सांसारिक सुखों पर निर्भर रहने से जीवन में वास्तविक संतोष नहीं मिलता। सच्चा समाधान हमें आत्मज्ञान और धर्म के सही मार्ग से ही मिलेगा।
-

◆ यह हमें क्या सिखाता है?

- ✓ धन और सत्ता सब कुछ नहीं है, यदि मन अशांत है तो यह व्यर्थ है।
 - ✓ भीतर से शांति चाहिए, केवल बाहरी सफलता पर्याप्त नहीं होती।
 - ✓ कभी-कभी हमें भी जीवन में ऐसा लगता है कि कोई समाधान नहीं है, लेकिन सही मार्गदर्शन से हल मिल सकता है।
 - ✓ जीवन का वास्तविक उद्देश्य केवल सांसारिक सफलता नहीं, बल्कि आंतरिक शांति और संतोष प्राप्त करना है।
-

◆ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

✓ 1) अवसाद और मानसिक स्वास्थ्य

- आज लोग बहुत पैसा और सफलता चाहते हैं, लेकिन अंदर से खाली महसूस करते हैं।
- यही समस्या अर्जुन की भी थी—सिर्फ बाहरी उपलब्धियाँ हमें सुख नहीं दे सकतीं।
- मानसिक शांति के लिए सही सोच और आध्यात्मिकता आवश्यक है।

✓ 2) करियर और पैसा ही सब कुछ नहीं

- कई लोग सोचते हैं कि एक अच्छी नौकरी, बड़ा घर, ज्यादा पैसा ही जीवन का उद्देश्य है।
- लेकिन जब वे यह सब पा लेते हैं, फिर भी कई लोग असंतोष और मानसिक तनाव महसूस करते हैं।
- इस श्लोक से हमें समझ में आता है कि संतोष और आंतरिक शांति भी जरूरी हैं।

✓ 3) कठिन परिस्थितियों में धैर्य रखना

- जब जीवन में कोई कठिनाई आती है, तो हमें निराशा में नहीं गिरना चाहिए।
- अर्जुन की तरह हमें भी किसी ज्ञानी व्यक्ति से मार्गदर्शन लेना चाहिए।
- सही मार्गदर्शन से हम जीवन की समस्याओं को हल कर सकते हैं।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- केवल सांसारिक सफलता हमें स्थायी सुख नहीं दे सकती।
- मानसिक शांति और आत्मज्ञान ही वास्तविक समाधान है।
- यदि हमें कोई समस्या हो, तो हमें किसी योग्य गुरु से मार्गदर्शन लेना चाहिए।
- हमें बाहरी सुखों के साथ-साथ अपने आंतरिक जीवन को भी सुधारना चाहिए।

► श्लोक 2.9 (संजय का अर्जुन के बारे में वर्णन)

संस्कृत श्लोक:

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप ।

न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ 9 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"संजय ने कहा: इस प्रकार अर्जुन ने हृषीकेश (श्रीकृष्ण) से कहा कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा।' ऐसा कहकर वह गोविंद के सामने चुप हो गया।"

◆ गहरी व्याख्या:

👉 1) अर्जुन का मानसिक संघर्ष

- अर्जुन पूरी तरह से हताश हो चुका था।
- उसने श्रीकृष्ण से साफ कह दिया कि "मैं युद्ध नहीं करूँगा।"
- अर्जुन की यह स्थिति दिखाती है कि जब मनुष्य भ्रम में होता है, तो वह निर्णयहीनता का शिकार हो जाता है।

👉 2) अर्जुन का मौन – क्या यह आत्मसमर्पण है?

- अर्जुन ने युद्ध न करने की घोषणा कर दी और फिर चुप हो गया।
- यह मौन समर्पण का संकेत नहीं है, बल्कि उसकी गहरी मानसिक परेशानी को दर्शाता है।
- जब कोई बहुत तनाव में होता है, तो वह बोलने की क्षमता भी खो देता है।

3) अर्जुन का श्रीकृष्ण को 'हृषीकेश' और 'गोविंद' कहना

- 'हृषीकेश' का अर्थ है "इंद्रियों के स्वामी" – यानी श्रीकृष्ण ही अर्जुन की भावनाओं को नियंत्रित कर सकते हैं।
- 'गोविंद' का अर्थ है "जो जीवों की रक्षा करता है" – यानी अर्जुन को विश्वास था कि श्रीकृष्ण ही सही मार्ग दिखाएंगे।

4) संजय द्वारा युद्धभूमि का वर्णन

- संजय धृतराष्ट्र को युद्ध की स्थिति बता रहा था।
- उसने अर्जुन की असहाय अवस्था को स्पष्ट किया – यह दिखाता है कि एक महान योद्धा भी मानसिक द्वंद्व में पड़ सकता है।

◆ यह हमें क्या सिखाता है?

- ✓ कभी-कभी जीवन में हमें निर्णय लेना मुश्किल हो जाता है।
- ✓ तनाव के समय मौन रहना भी एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया हो सकती है।
- ✓ किसी ज्ञानी व्यक्ति से मार्गदर्शन लेना हमें सही रास्ता दिखा सकता है।
- ✓ हमारे जीवन में भी ऐसे क्षण आते हैं जब हम खुद को असहाय महसूस करते हैं – तब हमें धैर्य रखना चाहिए।

◆ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

✓ 1) मानसिक तनाव और निर्णय लेने की समस्या

- आज भी लोग जब कठिनाइयों का सामना करते हैं, तो निर्णयहीनता में फँस जाते हैं।
- अर्जुन की तरह, वे भी कहते हैं "मैं यह नहीं कर सकता," और फिर चुप हो जाते हैं।

✓ 2) जब हम किसी मुश्किल निर्णय में फँस जाएँ

- यदि हम अर्जुन की तरह मानसिक द्वंद्व में हैं, तो हमें किसी ज्ञानी व्यक्ति से सलाह लेनी चाहिए।
- श्रीकृष्ण की तरह, हमें सही दिशा दिखाने वाला गुरु या मार्गदर्शक चाहिए।

✓ 3) आत्मनिरीक्षण और धैर्य

- अर्जुन का मौन हमें सिखाता है कि जब हम मानसिक रूप से कमज़ोर महसूस करें, तो जल्दबाजी में निर्णय न लें।
 - हमें शांत होकर स्थिति को समझना चाहिए और सही मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए।
-

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ जब हम जीवन में उलझन में हों, तो हमें जल्दबाजी में कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए।
- ✓ हमें किसी ज्ञानी व्यक्ति से मार्गदर्शन लेना चाहिए।
- ✓ तनाव में मौन रहना स्वाभाविक है, लेकिन हमें अपने डर से उबरना होगा।
- ✓ हर समस्या का समाधान संभव है, बस हमें धैर्य रखना होगा।

► श्लोक 2.10 (श्रीकृष्ण की मुस्कान और गीता का उपदेश शुरू)

संस्कृत श्लोक:

श्री भगवानुवाच ।
तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥ 10 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"श्री भगवान् (श्रीकृष्ण) ने, हल्की मुस्कान के साथ, युद्ध के बीच दुखी बैठे अर्जुन से ये शब्द कहे।"

◆ गहरी व्याख्या:

👉 1) श्रीकृष्ण की 'मुस्कान' का रहस्य

- श्रीकृष्ण हल्की मुस्कान के साथ अर्जुन को संबोधित कर रहे हैं।
- यह कोई साधारण मुस्कान नहीं बल्कि दिव्य मुस्कान है, जो यह दर्शाती है कि वह अर्जुन की चिंता को समझते हैं, लेकिन वे अर्जुन की मूर्खतापूर्ण दयालुता को भी देख रहे हैं।
- उनकी मुस्कान का संकेत है कि अर्जुन अज्ञानता के कारण दुखी है, और अब वे उसे ज्ञान की ओर ले जाने वाले हैं।

👉 2) 'हृषीकेश' शब्द का महत्व

- श्रीकृष्ण को यहाँ 'हृषीकेश' (इंद्रियों के स्वामी) कहा गया है।

- इसका अर्थ है कि वे अर्जुन की इंद्रियों और मन को नियंत्रित करने वाले हैं और उसे आत्म-ज्ञान देने वाले हैं।

👉 3) अर्जुन की मनःस्थिति

- अर्जुन अत्यधिक दुखी और भ्रमित है।
- वह अपने रिश्तेदारों के प्रति मोह में फँसकर धर्म और कर्तव्य को भूल चुका है।
- श्रीकृष्ण अब उसे सही राह दिखाने के लिए गीता का उपदेश प्रारंभ करेंगे।

👉 4) 'सेनयोरुभयोर्मध्ये' – युद्ध के बीच ज्ञान का जन्म

- यह अत्यंत रोचक है कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ज्ञान किसी शांत आश्रम में नहीं, बल्कि युद्ध के मैदान के बीच दिया।
- इसका संदेश यह है कि ज्ञान केवल एकांत में नहीं मिलता, बल्कि जीवन की चुनौतियों के बीच भी पाया जा सकता है।

◆ यह हमें क्या सिखाता है?

- ✓ जब हम दुखी हों, तो हमें सही मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है।
- ✓ एक ज्ञानी व्यक्ति (जैसे श्रीकृष्ण) हमें हमारी अज्ञानता से मुक्त कर सकता है।
- ✓ मोह और भावनात्मक कमजोरी हमारे कर्तव्य के मार्ग में बाधा बन सकती है।
- ✓ जीवन के कठिन समय में भी धैर्य रखें – वहाँ भी ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

◆ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

✓ 1) जब हम किसी समस्या में उलझे हों

- आज के समय में भी लोग संशय और तनाव में फँस जाते हैं।
- वे भी अर्जुन की तरह मनोवैज्ञानिक रूप से कमजोर हो जाते हैं।
- ऐसे में हमें श्रीकृष्ण की तरह कोई मार्गदर्शक चाहिए, जो हमें सही दिशा दिखाए।

✓ 2) समस्याओं को हल्के में लेना

- श्रीकृष्ण की मुस्कान यह सिखाती है कि हमें किसी भी समस्या को अत्यधिक गंभीरता से नहीं लेना चाहिए।
- जीवन में कई समस्याएँ आती हैं, लेकिन हमें धैर्य और सकारात्मक दृष्टिकोण बनाए रखना चाहिए।

✓ 3) आत्म-ज्ञान और आत्म-नियंत्रण

- हृषीकेश (इंद्रियों के स्वामी) शब्द हमें सिखाता है कि हमें भी अपने मन और इंद्रियों पर नियंत्रण रखना चाहिए।
 - आज के समय में, वासनाओं और भटकाव से बचने के लिए हमें आत्म-नियंत्रण सीखना जरूरी है।
-

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ कठिनाइयों के बीच भी धैर्य बनाए रखें।
- ✓ एक ज्ञानी मार्गदर्शक हमारी जिंदगी बदल सकता है।
- ✓ जीवन की समस्याओं को अत्यधिक गंभीरता से नहीं लेना चाहिए – हल्की मुस्कान के साथ भी उनका सामना किया जा सकता है।
- ✓ हमारे जीवन में भी 'हृषीकेश' (मन और इंद्रियों के स्वामी) की जरूरत है, जो हमें सही राह दिखाए।

► श्लोक 2.11 (अज्ञान से भरी करुणा)

संस्कृत श्लोक:

श्री भगवानुवाच ।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।

गतासूनगतासूनश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ 11 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"श्रीभगवान ने कहा: तुम उन लोगों के लिए शोक कर रहे हो जिनका शोक करना उचित नहीं है, फिर भी तुम ज्ञानी जैसी बातें कर रहे हो। जो ज्ञानी पुरुष होते हैं, वे न जीवित प्राणियों के लिए शोक करते हैं, न मृत व्यक्तियों के लिए।"

◆ गहरी व्याख्या:

👉 1) अर्जुन की मानसिक स्थिति

- अर्जुन अपने भाइयों, गुरुओं और संबंधियों की मृत्यु की कल्पना करके दुखी हो रहे थे।
- वे मान रहे थे कि यह युद्ध केवल विनाश लाएगा और इससे उनका कुल नष्ट हो जाएगा।
- लेकिन श्रीकृष्ण ने बताया कि इस तरह का शोक करना अज्ञानता है।

👉 2) 'प्रज्ञावादांश्च भाषसे' – ज्ञानी होने का दिखावा

- अर्जुन जानियों जैसी बातें कर रहे थे, जैसे कि धर्म, परिवार की रक्षा आदि, लेकिन उनकी यह करुणा अज्ञानता से उत्पन्न थी।
- वास्तव में वे अपने कर्तव्य (धर्म) से भटक चुके थे और इसे शोक और मोह से ढक दिया था।

3) पंडित (ज्ञानी) कौन होता है?

- श्रीकृष्ण कहते हैं कि ज्ञानी व्यक्ति न जीवितों के लिए शोक करता है, न मृतकों के लिए।
- क्योंकि वह आत्मा के शाश्वत (न कभी मरने वाले) होने के सत्य को जानता है।
- केवल शरीर नष्ट होता है, आत्मा अमर रहती है।

4) आत्मा और शरीर का भेद

- अर्जुन केवल शरीर को देख रहे थे और रिश्तों को शरीर तक सीमित मान रहे थे।
- लेकिन वास्तविक रिश्ते आत्मा से होते हैं, शरीर से नहीं।
- इसलिए जो ज्ञानी हैं, वे मृत्यु या जीवन के लिए शोक नहीं करते, क्योंकि आत्मा को कोई मार नहीं सकता।

◆ यह हमें क्या सिखाता है?

- ✓ जो गुजर चुका है, उसके लिए अत्यधिक शोक करना मूर्खता है।
- ✓ ज्ञान का केवल दिखावा करने से हम ज्ञानी नहीं बनते, हमें वास्तविक सत्य को समझना चाहिए।
- ✓ मृत्यु के भय से कर्तव्य से पीछे नहीं हटना चाहिए।
- ✓ आत्मा अमर है, केवल शरीर नष्ट होता है – इस सत्य को जानने वाला ही वास्तविक ज्ञानी होता है।

◆ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

✓ 1) दुख और शोक से बाहर आना

- जब हम किसी प्रियजन को खो देते हैं, तो हमें अत्यधिक शोक में डूबने के बजाय यह समझना चाहिए कि आत्मा अमर है।
- हमें दुख से उबरकर अपने कर्तव्य पर ध्यान देना चाहिए।

✓ 2) दिखावटी ज्ञान से बचना

- कई लोग सिर्फ ज्ञान की बातें करते हैं, लेकिन वे स्वयं भ्रमित रहते हैं।
- वास्तविक ज्ञान वही होता है, जिससे हमारे जीवन में बदलाव आए और हम दुख से मुक्त हो सकें।

✓ 3) हर परिस्थिति में संतुलन बनाए रखना

- इस श्लोक से हमें सिखाया जाता है कि हमें अत्यधिक भावुक नहीं होना चाहिए, बल्कि विवेकपूर्ण निर्णय लेने चाहिए।
 - चाहे जीवन में कोई भी समस्या आए, हमें अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटना चाहिए।
-

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ किसी भी स्थिति में कर्तव्य को नहीं छोड़ना चाहिए।
- ✓ अत्यधिक भावुक होकर निर्णय लेना सही नहीं है।
- ✓ मृत्यु का शोक करने से बेहतर है कि हम आत्मा के ज्ञान को समझें।
- ✓ वास्तविक ज्ञान वही है, जो हमें दुख से मुक्त करे।

श्लोक 2.12 – आत्मा कभी नष्ट नहीं होती, न ही नई होती है

संस्कृत श्लोक:

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥ 12 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

"न तो ऐसा कभी हुआ है कि मैं नहीं था, न तुम नहीं थे और न ही ये सभी राजा। और भविष्य में भी हम सब नहीं रहेंगे – ऐसा भी नहीं होगा।"

गहराई से व्याख्या:

👉 1) आत्मा का शाश्वत और नित्य अस्तित्व

- श्रीकृष्ण इस श्लोक में आत्मा की अनादि और अनंत प्रकृति को स्थापित करते हैं।
- यह श्लोक हमें बताता है कि –

"न तो आत्मा का कोई आदि है, न अंत। यह कभी नहीं जन्मी और कभी नहीं मरेगी।"

- अर्जुन सोच रहे थे कि युद्ध में सबकी मृत्यु हो जाएगी, और सबकुछ समाप्त हो जाएगा।
लेकिन कृष्ण उन्हें यह समझा रहे हैं कि आत्मा कभी समाप्त नहीं होती, केवल शरीर नष्ट होता है।
-

👉 2) कृष्ण का दिव्य संकेत: 'मैं भी सदा से हूं'

- यहाँ श्रीकृष्ण यह नहीं कह रहे कि "हम सबका जन्म होगा और मर जाएंगे"
बल्कि कह रहे हैं कि "हम कभी न अस्तित्व से बाहर थे, न भविष्य में होंगे।"
 - ये शब्द यह संकेत देते हैं कि श्रीकृष्ण सामान्य मानव नहीं हैं,
बल्कि वे स्वयं भगवान हैं – पूर्ण ब्रह्म, जो समय के पार हैं।
-

👉 3) "नासं" = कभी नहीं थे – यह गलत धारणा है

- हमारे शरीर का जन्म होता है और मृत्यु होती है,
परंतु आत्मा का अस्तित्व सदा रहता है – यह जन्म और मृत्यु से परे है।
 - 'मैं कभी नहीं था' या 'अब मैं हूं' या 'मैं नहीं रहूँगा' —
ये तीनों विचार शरीर की दृष्टि से हैं, आत्मा की दृष्टि से नहीं।
-

👉 4) जीवन, मृत्यु और पुनर्जन्म का सिद्धांत

- हम कई बार जन्म लेते हैं और मरते हैं —
लेकिन वह शरीर का चक्र है, आत्मा का नहीं।
 - अर्जुन, मैं, तुम और ये राजा – हम सब अलग-अलग शरीरों में बार-बार आए हैं,
लेकिन हमारे आत्मा-स्वरूप का अस्तित्व कभी समाप्त नहीं होता।
-

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) मृत्यु अंत नहीं है, यह केवल परिवर्तन है

- जब कोई मरता है, वह इस शरीर को त्यागकर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है।
- इससे हम सीखते हैं कि शोक करने की बजाय हमें आत्मा की स्थायित्व को समझना चाहिए।

✓ 2) समय के पार देखना सीखो

- हम अक्सर सोचते हैं – "क्या होगा भविष्य में?", "अगर मर गए तो?", "क्यों ये हो रहा है?"
लेकिन गीता कहती है —

| "तुम समय से परे हो, तुम शरीर नहीं – आत्मा हो।"

3) असली 'मैं' कौन है — यह जानना जरूरी है

- "मैं" शब्द जिसे हम बोलते हैं – वह शरीर नहीं, वह चेतन आत्मा है।
- जब तक हम खुद को शरीर मानते रहेंगे, दुख और भय पीछा नहीं छोड़ेंगे।
लेकिन अगर एक बार समझ लिया कि "मैं आत्मा हूं" —
तब न कोई मृत्यु का डर रहेगा, न जीवन का मोह।

आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ मनोविज्ञानिक दृष्टिकोण से:

- जब हमें लगता है कि सब खत्म हो गया, हमें चिंता, अवसाद या डर लगता है —
यह श्लोक हमें स्थिरता और संतुलन सिखाता है।
- यह आत्मा के अस्तित्व की पुष्टि करता है जिससे मानसिक शांति मिलती है।

◆ रिश्तों में संतुलन:

- हम जिनसे जुड़े हैं, वे केवल शरीर से नहीं, आत्मा से भी जुड़े हैं।
इसलिए वियोग का अर्थ नाश नहीं, केवल स्वरूप-परिवर्तन है।

◆ कर्तव्य में दृढ़ता:

- अगर आत्मा अमर है और शरीर नश्वर, तो कर्तव्य से पीछे हटना केवल भ्रम है।
इसलिए जीवन में कोई भी संकट हो, कर्तव्य पालन से पीछे नहीं हटना चाहिए।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ मैं शरीर नहीं, चेतन आत्मा हूं — यह आत्मबोध ही मोक्ष की दिशा है।
- ✓ मृत्यु कोई अंत नहीं है — यह केवल शरीर का परिवर्तन है।

- ✓ हर आत्मा शाश्वत है — जो आज है, वह पहले भी थी और आगे भी रहेगी।
- ✓ कर्तव्य से डरकर भागना आत्मज्ञान के विपरीत है।

श्लोक 2.13 – आत्मा का शरीर परिवर्तन और पुनर्जन्म

संस्कृत श्लोकः

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुहृति ॥ 13 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

"जैसे इस शरीर में जीवात्मा (आत्मा) बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था को प्राप्त होती है, वैसे ही मृत्यु के बाद वह दूसरे शरीर को प्राप्त होती है। इस सत्य को समझने वाला धीर पुरुष कभी भ्रमित नहीं होता।"

गहराई से व्याख्या:

👉 1) आत्मा शरीर में रहते हुए भी रूप बदलती है

- श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिस प्रकार हम एक ही जीवन में शारीरिक रूप से बदलते रहते हैं —
बचपन → जवानी → बुढ़ापा
वैसे ही मृत्यु के बाद आत्मा एक नया शरीर धारण करती है।
- इस परिवर्तन में शरीर बदलता है, परंतु "मैं" जो अनुभव कर रहा हूं, वह एक ही रहता है।

👉 2) देहिनः = जो देह में स्थित है = आत्मा

- 'देहिन' शब्द से श्रीकृष्ण स्पष्ट करते हैं कि
हम देह (शरीर) नहीं हैं, बल्कि उसमें स्थित चेतन सत्ता – आत्मा हैं।
- शरीर बाहरी वस्त्र की तरह है — जो समय के साथ पुराना होता है और बदल जाता है।

👉 3) 'तथा देहान्तर प्राप्तिः' = नए शरीर की प्राप्ति

- जैसे शरीर के अंदर बालपन से बुढ़ापा आता है,

वैसे ही मृत्यु कोई अंत नहीं है, बल्कि एक नए शरीर की शुरुआत है।

- यह श्लोक पुनर्जन्म (rebirth) के सिद्धांत को भी मजबूत करता है।

👉 4) धीर पुरुष भ्रमित नहीं होता

- जो व्यक्ति इस सत्य को समझता है, वह न तो मृत्यु से डरता है न ही शरीर के बदलने से दुखी होता है।
- 'धीर' वही है जो आत्मा को जानकर जीवन के हर परिवर्तन को सहनशीलता और विवेक से स्वीकार करता है।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) बचपन, जवानी और बुढ़ापा — सब शरीर के स्तर पर है

- क्या आपने कभी सोचा है कि बचपन में जो "मैं" था, वो "मैं" आज भी हूं? बदला सिर्फ शरीर है – पर अनुभव करने वाली आत्मा वही है।

✓ 2) मृत्यु = शरीर का त्याग, आत्मा की यात्रा

- मृत्यु कोई नष्ट हो जाना नहीं है — बल्कि यह एक देह से दूसरी देह की यात्रा है।
- जैसे कोई पुराने कपड़े उतारकर नए पहनता है, आत्मा भी एक शरीर छोड़कर दूसरा धारण करती है।

✓ 3) धीरता और विवेक – जीवन के बदलावों को स्वीकारना

- अगर हमें आत्मा की यह यात्रा समझ में आ जाए, तो जीवन के बदलाव, वियोग, वृद्धावस्था या मृत्यु — हमें डिगा नहीं सकते।
- हम भीतर से स्थिर और शांत रह सकते हैं।

⭐ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) बुद्धापा या मृत्यु से डरना व्यर्थ है

- जो व्यक्ति खुद को आत्मा समझता है, वह बुद्धापे, बीमारी या मृत्यु को एक स्वाभाविक परिवर्तन मानता है — डर नहीं।

◆ 2) अपने अंदर की चेतना को पहचानो

- हम हर दिन आईने में सिर्फ शरीर देखते हैं —
लेकिन गीता कहती है —
"असली पहचान शरीर नहीं, आत्मा है।"

◆ 3) किसी अपने को खो देने पर दुख कम करना

- जब कोई प्रिय व्यक्ति हमें छोड़ देता है,
यह जानना कि उसकी आत्मा अभी भी अस्तित्व में है — हमें मानसिक शांति देता है।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- शरीर बदलते हैं, आत्मा वही रहती है — इसे समझने वाला कभी मोह में नहीं पड़ता।
- मृत्यु अंत नहीं, यात्रा का एक चरण है।
- अपने 'असली स्वरूप' — आत्मा को पहचानना ही ज्ञान का मूल है।
- धैर्य और विवेक से जीवन के हर बदलाव को स्वीकार करना चाहिए।

श्लोक 2.14 – सुख-दुख, सर्दी-गर्मी सब अस्थायी हैं

संस्कृत श्लोक:

मात्रास्पर्शस्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ 14 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"हे कौन्तेय (कुंतीपुत्र अर्जुन), इन्द्रियों के स्पर्श से उत्पन्न होने वाले शीत (सर्दी), उष्ण (गर्मी), सुख और दुख के अनुभव क्षणिक हैं— ये आते हैं और चले जाते हैं। हे भारत, तू उन्हें सहन कर।"

Q गहराई से व्याख्या:

👉 1) "मात्रास्पर्शः" – इंद्रियों का संपर्क

- जो भी सुख-दुख, ठंड-गर्मी आदि हम अनुभव करते हैं, वे इंद्रियों और बाह्य जगत के संपर्क से पैदा होते हैं।
- जैसे त्वचा गर्म चीज़ को छूती है तो गर्मी का अनुभव होता है, कान मधुर शब्द सुनते हैं तो सुख होता है, पर ये सब बाहरी चीजों से आने वाले अस्थायी अनुभव हैं।

👉 2) "आगमापायिनः" – जो आते हैं और फिर चले जाते हैं

- श्रीकृष्ण कहते हैं कि सुख और दुख स्थायी नहीं होते। वे आते हैं, कुछ समय रहते हैं, और फिर चले जाते हैं – ठीक वैसे ही जैसे मौसम बदलता है।

☀️ गर्मी आती है → कुछ समय रहती है → फिर बरसात या सर्दी आ जाती है।

😢 दुख आता है → मन भारी होता है → फिर समय के साथ हल्का हो जाता है।

👉 3) "अनित्याः" – अस्थायी अनुभव

- संसार में कोई भी भाव स्थायी नहीं है। इसलिए इनका अत्यधिक स्वागत या विरोध करना मूर्खता है।
- सुख में उछल जाना और दुख में टूट जाना — यह अस्थिर चित्त का लक्षण है।

👉 4) "तितिक्षस्व" – सहन करो, स्थिर बनो

- श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं — "इन सबको सहन करो, धैर्य रखो, विचलित मत हो।"
- यह शिक्षा आज के हर व्यक्ति के लिए अमूल्य है: "जो आएगा, वह जाएगा — अपने अंदर स्थिरता बनाओ।"

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) सुख और दुख एक ही सिकके के दो पहलू हैं

- जब दुख आता है, तो हम सोचते हैं कि "सब खत्म हो गया है!"
लेकिन गीता कहती है –
"जैसे दुख आया है, वैसे ही चला जाएगा – तुम्हें बस टिके रहना है।"

✓ 2) भावनाओं का तूफान, स्थिर आत्मा पर असर नहीं करता

- एक ज्ञानी व्यक्ति सर्दी-गर्मी, लाभ-हानि, मान-अपमान —
इन सबको स्थिर भाव से स्वीकार करता है।

✓ 3) जीवन का हर अनुभव – एक सीख है

- हर अनुभव चाहे सुखद हो या पीड़ादायक –
हमें सहनशील, विवेकी और मजबूत बनाता है।

⭐ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ मानसिक तनाव और भावनात्मक संतुलन

- आजकल छोटी बातों से लोग तनाव, चिंता और गुस्से में आ जाते हैं।
यह श्लोक कहता है —
"जैसे मौसम बदलते हैं, वैसे ही परिस्थितियां भी बदलती हैं – इन्हें सहन करना सीखो।"

◆ टिकाऊ सफलता का राज – धैर्य और सहनशीलता

- जो व्यक्ति सुख-दुख में स्थिर रहना सीख जाता है,
वही दीर्घकालीन सफलता और शांति को प्राप्त करता है।

◆ Emotional Intelligence का मूल सूत्र

- यह श्लोक सिखाता है कि
बाहर की परिस्थितियां हमारे हाथ में नहीं हैं, पर प्रतिक्रिया देना हमारे हाथ में है।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ सुख-दुख, सफलता-असफलता – सब अस्थायी हैं।
- ✓ जो आएगा, वह जाएगा – इसलिए धैर्य रखो और आगे बढ़ते रहो।
- ✓ सहनशीलता और स्थिरता ही मानसिक बल है।
- ✓ असली संतुलन वही है जो हर परिस्थिति में अपने लक्ष्य और कर्तव्य से न हटे।

श्लोक 2.15 – धैर्य रखने वाला ही मोक्ष को प्राप्त करता है

संस्कृत श्लोक:

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ |
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ 15 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

"हे पुरुषों में श्रेष्ठ अर्जुन! जिस धीर पुरुष को ये सुख-दुख व्याकुल नहीं करते, जो सम्भाव बनाए रखता है — वही अमरता (मोक्ष) का अधिकारी होता है।"

गहराई से व्याख्या:

👉 1) "यं हि न व्यथयन्त्येते" – जो विचलित नहीं होता

- "एते" का अर्थ है – पिछले श्लोक में बताए गए अनुभवः
सुख, दुख, सर्दी, गर्मी, हानि, लाभ आदि।
- श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति इन सबसे विचलित नहीं होता,
जो जीवन की हर परिस्थिति में शांत और संतुलित रहता है,
वही सच्चा 'पुरुषार्थी' है।

👉 2) "समदुःखसुखं धीरं" – सम्भाव और धैर्य

- समता (Equanimity) ही सबसे बड़ा योग है –
मतलब: सुख आने पर उछलना नहीं और दुख आने पर टूटना नहीं।

- धीर वह होता है जो भावनाओं का गुलाम नहीं होता,
बल्कि उन्हें देखकर, समझकर, सहकर – अपने कर्तव्य पर केंद्रित रहता है।
-

👉 3) "सः अमृतत्वाय कल्पते" – वही अमरता (मोक्ष) का अधिकारी है

- "अमृतत्व" का अर्थ यहाँ मृत्यु से परे जाना है –
यानी ऐसा व्यक्ति जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो सकता है।
 - जो सुख-दुख में सम रहता है, वही योग्य बनता है आत्मज्ञान और मोक्ष के लिए।
-

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) सच्चा साधक वही है जो भीतर से स्थिर है

- दुनिया में हर दिन कुछ न कुछ बदलता रहता है —
लेकिन अगर हमारी अंतरात्मा स्थिर है,
तो हम बाहरी तूफानों में भी शांत रह सकते हैं।

✓ 2) मोक्ष केवल ज्ञान से नहीं, धैर्य और समता से भी मिलता है

- ज्ञान और पढ़ाई जरूरी हैं,
पर उससे भी ज़्यादा जरूरी है –
"व्यवहार में संतुलन लाना"।
-

⭐ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ Emotional Stability (भावनात्मक संतुलन)

- हर इंसान के जीवन में कभी दुख आता है, कभी सुख –
लेकिन जो भावनात्मक रूप से स्थिर रहता है, वही सफल होता है।

◆ Resilience (आघात सहने की क्षमता)

- जब कोई मुश्किल आए, तब टूट जाना सरल है –
लेकिन उसे सहन करके आगे बढ़ना, यही वास्तविक resilience है।

◆ Real Spiritual Growth (सच्ची आध्यात्मिक प्रगति)

- ध्यान, भक्ति, पूजा तब तक अधूरी हैं जब तक हम सुख-दुख में समता नहीं ला पाते।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ जीवन में आने वाले सुख-दुख को समान भाव से देखना सीखें।
- ✓ भावनाओं का गुलाम बनने की बजाय, उन पर नियंत्रण रखें।
- ✓ मोक्ष पाने के लिए केवल ज्ञान नहीं, व्यवहारिक संतुलन जरूरी है।
- ✓ धैर्य, समता और स्थिरता – यही सच्चे साधक की पहचान है।

श्लोक 2.16 – सत्य और असत्य का स्पष्ट भेद

संस्कृत श्लोकः:

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ 16 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

"जो असत्य (नाशवान) है, उसका कोई अस्तित्व नहीं होता।
और जो सत्य (शाक्त) है, उसका कभी अभाव नहीं होता।
इस दोनों के सत्यस्वरूप को तत्त्वदर्शी ज्ञानीजन ही देख पाते हैं।"

गहरी व्याख्या:

👉 1) "नासतो विद्यते भावः" – असत्य का कोई अस्तित्व नहीं होता

- 'असत्' = जो नाशवान है, जो अस्थायी है, जैसे शरीर, वस्तुएं, धन, संबंध।
- श्रीकृष्ण कहते हैं कि इनका असली कोई टिकाऊ अस्तित्व नहीं है,
क्योंकि ये एक दिन नष्ट हो जाते हैं।

 शरीर वृद्ध होता है, रोगी होता है, फिर मर जाता है —

 मकान बनते हैं, टूटते हैं —

 धन आता है, चला जाता है।

➡ ये सब "नास्तो" (नाशवान) हैं — इनका अस्थायी "भास" तो है, पर "सत्य भाव" नहीं है।

👉 2) "नाभावो विद्यते सतः" – सत्य कभी नष्ट नहीं होता

- 'सत्' = जो शाश्वत है, जो कभी नष्ट नहीं होता – यानी आत्मा, ब्रह्म, परमसत्य।
- आत्मा शरीर बदलती है, पर खुद कभी नष्ट नहीं होती।

जैसे बिजली बल्ब बदलने से बंद नहीं होती,

वैसे ही आत्मा शरीर बदलती है, पर "सत" बनी रहती है।

➡ जो आत्मा का ज्ञान रखता है, वही "तत्त्वदर्शी" कहलाता है।

👉 3) "तत्त्वदर्शिभिः" – तत्त्व को जानने वाले ही सत्य को समझते हैं

- श्रीकृष्ण यहाँ एक संकेत दे रहे हैं कि
साधारण लोग सत् और असत् में अंतर नहीं कर पाते।
- लेकिन जो आत्मा और ब्रह्म का तत्त्वज्ञान रखते हैं,
वही समझ पाते हैं कि शरीर नाशवान है, आत्मा अमर है।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) भौतिक वस्तुएं असत्य (अस्थायी) हैं

- अगर हम सिर्फ शरीर, वस्तु, नाम, प्रसिद्धि को सत्य मान लेंगे —
तो हम हमेशा दुखी रहेंगे, क्योंकि ये सब क्षणिक हैं।

✓ 2) असली सत्य – आत्मा और उसका ज्ञान

- आत्मा न जन्मती है, न मरती है, न जलती है, न सूखती है।

यही वास्तविक "सत्" है – और इसी को जानना ही गीता का मूल लक्ष्य है।

⭐ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) दुख और क्षति को सही दृष्टिकोण से देखना

- जब कोई चीज़ हमसे छिन जाती है,
तो हम समझ सकते हैं कि वह **असत् (अस्थायी)** थी —
और जो हमसे कभी नहीं छिन सकता, वो हमारी आत्मा की शांति है।

◆ 2) अध्यात्म और विज्ञान का मिलन

- विज्ञान कहता है कि ऊर्जा कभी नष्ट नहीं होती —
गीता कहती है: आत्मा (spiritual energy) अमर है।

◆ 3) सच्चा सुख भीतर है, बाहर नहीं

- बाहर की दुनिया बदलती रहती है, इसलिए वहाँ स्थायी सुख नहीं है।
लेकिन भीतर आत्मा में जो ज्ञान, प्रेम, और शांति है – वही सत्य है।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ शरीर और वस्तुएं अस्थायी हैं – उन्हें ही सबकुछ मत समझो।
- ✓ आत्मा अमर है – उसके ज्ञान से ही शाश्वत सुख पाया जा सकता है।
- ✓ सत्य और असत्य का भेद जानना ही अध्यात्म की शुरुआत है।
- ✓ जो केवल बदलने वाली चीज़ों को पकड़ते हैं, वे सदा अस्थिर रहेंगे।

श्लोक 2.17 – आत्मा को कोई नष्ट नहीं कर सकता

画卷 संस्कृत श्लोक:

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशम् अव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति ॥ 17 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

"जिससे यह सम्पूर्ण शरीर व्याप्त है, उस आत्मा को जानो कि वह अविनाशी है।
उस अविनाशी आत्मा का विनाश कोई भी नहीं कर सकता।"

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) "अविनाशि तु तद्विद्धि" – आत्मा नाशरहित है

- श्रीकृष्ण कहते हैं कि **जिस तत्व (आत्मा)** से यह सारा शरीर और चेतना भरी हुई है,
वह अविनाशी है – उसे न कोई मार सकता है, न जला सकता है।

जैसे बिजली बल्ब में रोशनी भरती है लेकिन खुद बल्ब नहीं होती —

वैसे ही आत्मा शरीर में चेतना देती है, लेकिन खुद शरीर नहीं है।

👉 2) "येन सर्वमिदं ततम्" – आत्मा सबमें फैली हुई है

- आत्मा केवल शरीर के भीतर ही नहीं, हर जीव में समान रूप से विद्यमान है।
- यही कारण है कि **वसुधैव कुटुम्बकम्** (पूरा संसार एक परिवार है) जैसी भावना आती है।

शरीर का अलग-अलग आकार, रंग, रूप हो सकता है —

लेकिन चेतना (**आत्मा**) सबमें एक सी है।

👉 3) "विनाशम् अव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति" – कोई नष्ट नहीं कर सकता

- आत्मा को कोई अस्त्र नहीं काट सकता, कोई अग्नि नहीं जला सकती,
कोई जल गला नहीं सकता, कोई वायु सुखा नहीं सकती।
- इसलिए श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह आत्मा अव्यय (जिसका कोई ह्लास नहीं होता) है।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) हम शरीर नहीं, आत्मा हैं

- शरीर वृद्ध होता है, मरता है —

लेकिन आत्मा शाश्वत, अमर और अजर है।

✓ 2) मृत्यु केवल शरीर की होती है, आत्मा की नहीं

- जैसे कपड़ा फटता है तो हम नया पहन लेते हैं,
वैसे ही आत्मा एक शरीर छोड़कर दूसरा लेती है।

⭐ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) मृत्यु से डरना क्यों नहीं चाहिए?

- मृत्यु केवल एक बदलाव है —
आत्मा का एक वस्त्र (शरीर) से दूसरे वस्त्र में जाना।

| इससे डरने की बजाय, आत्मा की अमरता पर ध्यान देना चाहिए।

◆ 2) Universal Respect for Life

- अगर हम समझ जाएं कि हर जीव में वही आत्मा है,
तो हम किसी को भी नीचा नहीं समझेंगे, किसी से द्वेष नहीं करेंगे।

| यह समझ दयालुता, समानता और करुणा की ओर ले जाती है।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ हमारा असली स्वरूप आत्मा है, जो कभी नष्ट नहीं होती।
- ✓ दूसरों के भीतर भी उसी आत्मा का अंश है – इसलिए सबका आदर करें।
- ✓ मृत्यु केवल परिवर्तन है, अंत नहीं।
- ✓ आत्मा न काटी जा सकती है, न मारी जा सकती है – वह शुद्ध ऊर्जा है।

श्लोक 2.18 – नाशवान शरीर, अविनाशी आत्मा

■ संस्कृत श्लोक:

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ 18 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

"ये शरीर नाशवान हैं,
लेकिन इनमें स्थित आत्मा नित्य (शाश्वत),
अनाशनीय और अप्रमेय (जिसे मापा नहीं जा सकता) है।
इसलिए, हे भारत (अर्जुन), तू युद्ध कर।"

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) "अन्तवन्त इमे देहाः" – शरीर नाशवान है

- श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह देह (शरीर) एक दिन जरूर नष्ट होगा।
- चाहे कोई कितना भी बलवान, सुंदर या जवान हो —
शरीर की उम्र सीमित है —
मृत्यु एक अटल सत्य है।

यह श्लोक हमें यह भी सिखाता है कि किसी के शरीर को देखकर मोह में मत फँसो।

👉 2) "नित्यस्योक्ताः शरीरिणः" – आत्मा नित्य है

- 'शरीरीणः' का अर्थ है – जो इस शरीर में वास करता है = आत्मा
- वह आत्मा नित्य (हमेशा रहने वाली) है,
और उसे कोई मार नहीं सकता।

आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है।

वह सिर्फ देह धारण करती है और फिर त्याग देती है।

👉 3) "अनाशिनः अप्रमेयस्य" – आत्मा को कोई नष्ट नहीं कर सकता, न समझ सकता है

- 'अनाशिनः' = जिसे नष्ट नहीं किया जा सकता
 - 'अप्रमेयः' = जिसे मापा या पूरी तरह समझा नहीं जा सकता
- ➡ आत्मा एक दिव्य तत्व है — वह अनुभव की जा सकती है, पर शब्दों में पूरी तरह व्यक्त नहीं की जा सकती।

👉 4) "तस्माद्युध्यस्व भारत" – इसलिए युद्ध कर, अर्जुन!

- श्रीकृष्ण अब अर्जुन से कह रहे हैं कि:

"तू जिन शरीरों के नाश को देखकर दुखी हो रहा है — वे तो नाशवान हैं ही।
आत्मा को तू मार नहीं सकता, न कोई और मार सकता है।
इसलिए मोह छोड़ और अपना कर्तव्य निभा।"

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) मृत्यु का भय छोड़ो – आत्मा अमर है

- मृत्यु केवल शरीर की होती है, आत्मा की नहीं।
- आत्मा अमर है – इसलिए हमें आत्मा के दृष्टिकोण से जीवन देखना चाहिए।

✓ 2) कर्तव्य से पीछे हटना अर्थम् है

- अगर कोई सिर्फ मोह, डर या भावुकता के कारण अपने कर्तव्य से भागे, तो वह अर्थम् बनता है।

अर्जुन का युद्ध धर्म का रक्षण था —

इसलिए श्रीकृष्ण कहते हैं: "युद्ध कर!"

🌟 आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) अस्थायी चीजों से मोह मत रखो

- रूप, पैसा, शरीर – ये सब "अन्तर्वंत" हैं – यानी खत्म होने वाले।

- अगर हम इन्हीं से अपने सुख-दुख को जोड़ें, तो हमेशा दुखी रहेंगे।

◆ 2) जीवन में कठिन फैसले लेते समय भावनाओं में न बहो

- जैसे अर्जुन युद्ध से भागना चाहते थे —
वैसे ही हम भी कई बार भावुक होकर कर्तव्य से हट जाते हैं।

| श्रीकृष्ण का संदेश है: भावनाओं में बहो मत, ज्ञान से निर्णय लो।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ शरीर नाशवान है, आत्मा अमर है – यह समझना ही सच्चा विवेक है।
- ✓ कर्तव्य का पालन हर परिस्थिति में आवश्यक है।
- ✓ जो आत्मा के दृष्टिकोण से देखता है, वही मोह और दुख से मुक्त होता है।
- ✓ भावनात्मक भ्रम में आकर धर्म से हटना गलत है।

श्लोक 2.19 – “न कोई मारता है, न मरता है”

संस्कृत श्लोक:

| य एनं वेत्ति हन्तारं यश्वैनं मन्यते हतम् ।
| उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ 19 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"जो यह समझता है कि आत्मा किसी को मार सकती है,
या जो यह सोचता है कि आत्मा मारी जा सकती है—
दोनों ही नहीं जानते।
क्योंकि आत्मा न किसी को मारती है, न मारी जाती है।"

गहरी व्याख्या:

👉 1) “हन्तारं” और “हतम्” – मारने और मारे जाने का भ्रम

- श्रीकृष्ण कहते हैं कि:

जो यह सोचता है कि "मैं किसी को मार रहा हूँ",
या "मुझे मार दिया गया",
वह आत्मा के सच्चे स्वरूप को नहीं जानता।
- ➡ ये शरीर का अनुभव है, न कि आत्मा का।
- 👉 2) "उभौ तौ न विजानीतः" – दोनों ही अज्ञानी हैं
- मारने वाला और मरने वाला,
दोनों अगर सोचें कि ये आत्मा से जुड़ा है — तो वे अज्ञानी हैं।
- यह श्लोक साफ कहता है:
- अहंकारवश हम जो 'मैं मारा' या 'मैंने मारा' समझते हैं – वह केवल देह की दृष्टि है, न कि आत्मा की।
- 👉 3) "नायं हन्ति न हन्यते" – आत्मा न मारती है, न मारी जाती है
- आत्मा अकर्ता (कर्ता नहीं) और अभोक्ता (भोगने वाली नहीं) है।
 - वह केवल द्रष्टा (देखने वाली) और साक्षी (गवाह) होती है।
- आत्मा पर कोई हिंसा नहीं हो सकती – क्योंकि वह नित्य, निर्लेप और अजन्मा है।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

- ✓ 1) हिंसा का मूल शरीर से जुड़ा है, आत्मा से नहीं
- जब कोई मरता है, आत्मा नहीं मरती – केवल शरीर समाप्त होता है।
 - आत्मा तो अनंत यात्रा पर होती है।
- ✓ 2) कर्तापन का अभिमान छोड़ना चाहिए

- "मैंने किया", "मैंने मारा", "मुझे कष्ट मिला" – ये सब अहंकार के भ्रम हैं।
 - आत्मा न कुछ करती है, न भोगती है — वह केवल साक्षीभाव में रहती है।
-

आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) अहंकार से छुटकारा

- जब हम मानते हैं कि "मैं ही सबकुछ कर रहा हूँ",
तब हम दुःख, मोह और पाप के जाल में फँसते हैं।

| आत्मा को जानने वाला व्यक्ति कर्तापिन छोड़ देता है और शांत रहता है।

◆ 2) मृत्यु से जुड़े भ्रम दूर होते हैं

- अगर कोई मर जाए, तो यह समझो कि उसकी आत्मा को कुछ नहीं हुआ,
वह सिर्फ स्थान परिवर्तन कर रही है।

| इससे शोक और भय कम होता है।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ हम आत्मा हैं – न हम किसी को मार सकते हैं, न कोई हमें मार सकता है।
- ✓ कर्तापिन और भोक्तापन का अभिमान छोड़ना चाहिए।
- ✓ जो आत्मा के दृष्टिकोण से देखता है, वही जीवन को सही समझता है।
- ✓ मृत्यु और हत्या – ये केवल शरीर तक सीमित हैं, आत्मा से नहीं जुड़ीं।

श्लोक 2.20 – आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है

संस्कृत श्लोक:

| न जायते म्रियते वा कदाचिन्

| नायं भूत्वा भविता वा न भूयः |

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो

**न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ 20 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

"यह आत्मा न कभी जन्म लेती है और न कभी मरती है,
न यह पहले कभी उत्पन्न हुई थी, न अब होती है, और न आगे होगी।
यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है।
जब शरीर मारा जाता है, तब भी यह आत्मा मारी नहीं जाती।"

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) "न जायते म्रियते वा कदाचित्" – आत्मा का जन्म-मरण नहीं होता

- आत्मा कभी जन्म नहीं लेती, जैसे शरीर लेता है।
- मरण भी केवल शरीर का होता है, आत्मा का नहीं।

➡ जन्म और मृत्यु – ये केवल शरीर की घटनाएँ हैं, आत्मा तो सदैव विद्यमान रहती है।

👉 2) "नायं भूत्वा भविता वा न भूयः" – आत्मा को न उत्पत्ति होती है, न विनाश

- आत्मा कभी उत्पन्न नहीं होती, और भविष्य में भी नहीं होगी।
- वह किसी प्रक्रिया से गुजरती ही नहीं – वह नित्य है, जैसे सूर्य का प्रकाश।

आत्मा न नई होती है, न पुरानी – वह समकालिक और सनातन है।

👉 3) "अजो नित्यः शाश्वतः पुराणः" – आत्मा के गुण

- अजो = जो जन्महीन है
- नित्यः = जो हमेशा है
- शाश्वतः = जो स्थायी है
- पुराणः = जो बहुत पुराना होते हुए भी हमेशा नया जैसा है

➡ आत्मा ना समय में बंधी है, ना बदलाव में।

वह परिवर्तनशील संसार में एकमात्र अपरिवर्तनशील सत्य है।

👉 4) “न हन्यते हन्यमाने शरीरे” – शरीर नष्ट हो जाए, आत्मा नहीं होती

- जब शरीर मारा जाता है, आत्मा न मारी जाती है, न धायल होती है।
- आत्मा को कोई शस्त्र, अग्नि, जल या वायु नष्ट नहीं कर सकती।

| आत्मा केवल देह बदलती है, जैसे कोई पुराने कपड़े उतारकर नए पहनता है।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) हम आत्मा हैं, न कि शरीर

- शरीर के जन्म-मृत्यु से दुखी होने की आवश्यकता नहीं।
- जो जन्मा नहीं, वह मरेगा कैसे?

➡ इस सत्य को जानने वाला व्यक्ति अविचलित, निडर और शांत हो जाता है।

✓ 2) मृत्यु केवल एक अवस्था है, अंत नहीं

- मृत्यु एक शरीर का परिवर्तन है — आत्मा की यात्रा नहीं रुकती।
- आत्मा का कोई अंत नहीं है — वह अनंत है।

✓ 3) भावनात्मक और मानसिक स्थिरता आती है

- जब हमें ज्ञात हो जाता है कि मेरा सच्चा स्वरूप आत्मा है,
तो हम भय, शोक, मोह और क्रोध से ऊपर उठ जाते हैं।

💡 आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) मृत्यु से भय मुक्त जीवन

- आज के समय में मृत्यु सबसे बड़ा डर है —
यह श्लोक मनोवैज्ञानिक रूप से बहुत मुक्त करता है।

| “मैं मरा नहीं हूँ — सिर्फ शरीर बदला है।”

◆ 2) आत्मा का बोध = मानसिक शांति

- जब हम आत्मा की दृष्टि से दुनिया को देखते हैं,
तो हमें न कोई हानि दुख देती है, न कोई लाभ अहंकार देता है।

| जीवन में संतुलन और स्थिरता आती है।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ हमारा सच्चा स्वरूप आत्मा है, न कि शरीर।
- ✓ आत्मा न कभी जन्म लेती है, न मरती है – वह सनातन है।
- ✓ मृत्यु एक भ्रम है – आत्मा की यात्रा जारी रहती है।
- ✓ जो आत्मा को जानता है, वह भय, मोह और अशांति से मुक्त हो जाता है।

श्लोक 2.21 – जो आत्मा को जानता है, वह अनाशय है

संस्कृत श्लोक:

| वेदाविनाशिनं नित्यं य एनं वेद स्वयं सर्वशः |

| इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ 21 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

“हे भारत (अर्जुन)! वेद जो इस आत्मा को सम्पूर्ण रूप से जानता है, वह इस नित्य और अविनाशी आत्मा को जानता है।

यह आत्मा इन्द्रियों और इन्द्रियार्थों से परे है। इसलिए हे भारत, तुम युद्ध करो।”

गहरी व्याख्या:

👉 1) “वेदाविनाशिनं नित्यम्” – जो अविनाशी को जानता है

- वेद यहाँ ज्ञान का प्रतीक है।

- जो व्यक्ति अविनाशी (नष्ट न होने वाली) और नित्य (हमेशा रहने वाली) आत्मा को समझता है, वह सच्चा ज्ञानी कहलाता है।
-

👉 2) "स्वयं सर्वशः" – सम्पूर्ण ज्ञान

- यह आत्मा सर्वत्र व्याप्त, सर्वव्यापी और संपूर्ण है।
 - वह शरीर, मन, इन्द्रिय और इन सब के विषयों से ऊपर है।
-

👉 3) "इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः" – इन्द्रियों और इन्द्रिय वस्तुओं से परे

- आत्मा का अस्तित्व इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषयों से स्वतंत्र है।
 - जो आत्मा को जानता है, वह इन मोह-बंधनों में नहीं फँसता।
-

👉 4) "तस्माद् युद्धस्व भारत" – इसलिए युद्ध करो

- अर्जुन को समझाया गया कि इस ज्ञान के आधार पर वह अपने धर्म का पालन करे और युद्ध करे।
 - आत्मा के ज्ञान से भय और मोह दूर होता है, इसलिए कर्तव्य से पीछे नहीं हटना चाहिए।
-

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) आत्मा के ज्ञान से भय और भ्रम दूर होते हैं

- जब हम आत्मा को जानते हैं, तो मृत्यु, हार या दुःख का डर नहीं रहता।
- हम अपने कर्तव्य को निःरता से निभाते हैं।

✓ 2) इन्द्रिय और सांसारिक मोह-बंधन से ऊपर उठना

- सांसारिक इच्छाओं और इन्द्रिय वासना से ऊपर उठकर आत्मा का बोध करना आवश्यक है।

✓ 3) धर्म के पथ पर चलना आवश्यक है

- ज्ञान मिलने के बाद भी कर्तव्य से हटना सही नहीं।
 - यह ज्ञान हमें धर्म-युद्ध में दृढ़ता से लड़ने के लिए प्रेरित करता है।
-

⭐ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) मानसिक दृढ़ता और निडरता

- आत्मा के ज्ञान से हम किसी भी कठिनाई से घबराते नहीं।
- हम अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को निडरता से निभाते हैं।

◆ 2) मोह-माया से ऊपर उठना

- सांसारिक वस्तुओं की लालसा और भय से दूर रहना।
- अपनी ऊर्जा को जीवन के सच्चे उद्देश्य में लगाना।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ जो आत्मा को समझता है, वह असली ज्ञानी है।
- ✓ ज्ञान मिलने के बाद भी कर्म से पीछे नहीं हटना चाहिए।
- ✓ इन्द्रिय सुख-दुख के चक्र में फँसना बंद करना चाहिए।
- ✓ सतत कर्मशील और निडर बने रहना चाहिए।

श्लोक 2.22 – शरीर बदलता है, आत्मा नहीं



संस्कृत श्लोक:

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि
अन्यानि संयाति नवानि देही ॥ 22 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नए वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार आत्मा भी पुराने (जर्जर) शरीर को त्यागकर नए शरीर को धारण करती है।"



गहरी व्याख्या:

👉 1) “वासांसि जीणानि यथा विहाय” – पुराने वस्त्रों का त्याग

- वासांसि = वस्त्र
- जीणानि = पुराने, फटे हुए
- विहाय = छोड़कर, त्याग कर

जैसे कोई व्यक्ति पुराने, फटे-पुराने कपड़े उतारकर नए कपड़े पहन लेता है, वैसे ही...

👉 2) “नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि” – नए वस्त्र ग्रहण करना

- नवानि = नए
- गृह्णाति = ग्रहण करता है
- नरोऽपराणि = दूसरा मनुष्य (यहां अर्थ है आत्मा)

👉 आत्मा शरीर को उसी प्रकार बदलती है जैसे मनुष्य वस्त्र बदलता है।

👉 3) “तथा शरीराणि विहाय जीणानि” – पुराने शरीर को त्यागना

- आत्मा पुराने शरीर को छोड़ देती है, जो बूढ़ा, कमजोर या नष्ट हो चुका है।
-

👉 4) “अन्यानि संयाति नवानि देही” – नए शरीर को धारण करना

- आत्मा एक पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण करती है।
 - यह निरंतर होने वाली प्रक्रिया है।
-

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) शरीर नित्य परिवर्तनशील है

- शरीर जन्म लेता है, बढ़ता है, बूढ़ा होता है और अंत में नष्ट हो जाता है।
- लेकिन आत्मा इससे अपरिवर्तित रहती है।

✓ 2) आत्मा का पुनर्जन्म सिद्धांत

- आत्मा एक शरीर छोड़ती है और दूसरे में प्रवेश करती है, जैसा कि नए वस्त्र धारण करना।

✓ 3) हमारा सच्चा स्वरूप शरीर नहीं, आत्मा है

- शरीर केवल आवरण है, जो क्षणिक है।
 - आत्मा ही हमारा स्थायी स्वरूप है।
-

आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) मृत्यु से डरना छोड़ें

- मृत्यु केवल शरीर का अंत है, आत्मा का नहीं।
- शरीर के क्षय को समझकर उससे डरना उचित नहीं।

◆ 2) जीवन में परिवर्तन को सहज रूप से स्वीकारें

- जैसे वस्त्र बदलते हैं, वैसे जीवन में भी बदलाव आते हैं।
 - इन्हें स्वीकार कर जीवन को आगे बढ़ाना चाहिए।
-

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ शरीर केवल आवरण है, आत्मा नित्य और अविनाशी है।
- ✓ जैसे वस्त्र बदलते हैं, वैसे शरीर बदलते रहते हैं।
- ✓ इस सच्चाई को समझकर मृत्यु का भय खत्म करें।
- ✓ आत्मा के ज्ञान से आत्मविश्वास और शांति प्राप्त करें।

श्लोक 2.23 – आत्मा नष्ट नहीं होती

संस्कृत श्लोक:

न जायते म्रियते वा कदाचि
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ 23 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

"आत्मा न कभी जन्म लेता है, न कभी मरता है, न वह हुआ है और न भविष्य में होगा। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुराना है। शरीर के नष्ट होने पर भी यह नष्ट नहीं होता।"

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) "न जायते न म्रियते कदाचि" – आत्मा का अमरत्व

- आत्मा कभी जन्म नहीं लेती और न कभी मरती है।
 - यह जन्म-मरण के चक्र से परे है।
-

👉 2) "न नायं भूत्वा भविता वा न भूयः" – न कभी अस्तित्व में आई, न कभी जाएगी

- आत्मा न तो उत्पन्न हुई है, न कभी नष्ट होगी।
 - यह नित्य और अनंत है।
-

👉 3) "अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो" – यह अजन्मा, शाश्वत और पुराना है

- 'अजः' का अर्थ है जन्म नहीं लेना।
 - यह निरंतर, सदैव स्थिर और अनादि काल से है।
-

👉 4) "न हन्यते हन्यमाने शरीरे" – शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा नहीं नष्ट होती

- जब शरीर नष्ट हो जाता है, तब आत्मा अजर और अमर रहती है।
 - आत्मा शरीर की मृत्यु से अप्रभावित रहती है।
-

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) आत्मा अमर है

- हमारा वास्तविक स्वरूप अमर है, नष्ट नहीं होता।

✓ 2) शरीर ही नश्वर है

- शरीर का जन्म और मृत्यु सामान्य प्रक्रिया है, लेकिन आत्मा इसके बंधन से मुक्त है।

3) जीवन-मृत्यु का भय छोड़ें

- यह ज्ञान हमें जीवन के प्रति भयमुक्त करता है।

आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) मृत्यु के डर को खत्म करना

- आत्मा के अमरत्व का बोध हमें मृत्यु से डरने से बचाता है।
- हम जीवन को अधिक सकारात्मक और निर्भीक दृष्टि से देखते हैं।

◆ 2) स्थायी सच को समझना

- इस श्लोक के अनुसार, हमें अपने असली स्वरूप को पहचानना चाहिए।
- आत्मा की अमरता को जानकर जीवन में स्थिरता आती है।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ आत्मा जन्म-मरण से परे है।
- ✓ शरीर नष्ट होता है, आत्मा नहीं।
- ✓ मृत्यु का भय छोड़ो, आत्मा अमर है।
- ✓ आत्मा का ज्ञान जीवन में स्थिरता और शांति लाता है।

श्लोक 2.24 – आत्मा कभी नहीं फटती या जलती

संस्कृत श्लोक:

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतमश्नुते ।

एवं योगयुक्तो मुनीर्नाऽमृतत्वमश्नुते ॥ 24 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"जो मनुष्य अज्ञानता से मृत्यु को पार कर, ज्ञान के द्वारा अमरता को प्राप्त होता है, वही योग में स्थित मुनि अमरत्व को प्राप्त होता है।"

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) "अविद्या मृत्युं तीर्त्वा" – अज्ञान से मृत्यु को पार करना

- 'अविद्या' का अर्थ है अज्ञान, जो मृत्यु और बंधनों का कारण है।
- अज्ञान की अवस्था में व्यक्ति मृत्यु और जन्म के चक्र में फंसा रहता है।
- इसे पार करना मतलब है जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होना।

👉 2) "विद्या अमृतमश्वुते" – ज्ञान से अमरता प्राप्त करना

- ज्ञान यानी आत्मा और ब्रह्म का सच्चा ज्ञान।
- जो व्यक्ति इस ज्ञान को प्राप्त करता है, वह अमरता को प्राप्त कर लेता है।

👉 3) "एवं योगयुक्तो मुनिर्न्" – योगयुक्त मुनि

- योगयुक्त व्यक्ति यानी वह जो योग के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करता है।
- मुनि का अर्थ है ज्ञानी, जो सांसारिक मोह-माया से ऊपर उठ चुका हो।

👉 4) "अमृतत्वमश्वुते" – अमरत्व की प्राप्ति

- योग द्वारा संयम और ज्ञान पाने वाला मुनि अमरत्व को प्राप्त करता है।
- यहाँ अमरत्व का अर्थ केवल शारीरिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अमरत्व है।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) अज्ञानता से मुक्ति

- जन्म-मरण के बंधन से निकलने के लिए अज्ञान को दूर करना ज़रूरी है।

✓ 2) सच्चा ज्ञान जीवन-मरण से ऊपर उठाता है

- ज्ञान ही हमें अमरता और शांति प्रदान करता है।

✓ 3) योग और साधना का महत्व

- योग केवल शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि आध्यात्मिक ज्ञान और एकाग्रता का साधन है।

आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) जीवन में अज्ञानता से बाहर निकलना

- हमें अपने जीवन के भ्रम, भय और अनिश्चितताओं से ऊपर उठना चाहिए।

◆ 2) योग और ध्यान को अपनाना

- योग और ध्यान के माध्यम से मानसिक शांति, एकाग्रता और ज्ञान प्राप्त होता है।

◆ 3) जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति

- आत्मा का ज्ञान पाने पर हम जीवन के भय और दुःख से मुक्त हो सकते हैं।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ अज्ञान से मुक्ति आवश्यक है।
- ✓ योग और ज्ञान के माध्यम से अमरता प्राप्त होती है।
- ✓ सांसारिक मोह से ऊपर उठना चाहिए।
- ✓ अमृतत्व की प्राप्ति से ही सच्ची शांति मिलती है।

श्लोक 2.25 – आत्मा का स्वरूप सूक्ष्म और दृढ़ है

संस्कृत श्लोक:

अक्षरं परमं स्वरूपं आदित्यवर्णं तमसः परं गतेः |

यत् पश्यति सर्वत्र सर्वं च तत् पश्यति सः ॥ 25 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"आत्मा अक्षर (जिसका नाश नहीं होता) है, परम स्वरूप है, सूर्य के समान प्रकाशमान है और तमस (अंधकार) के परे है। जो व्यक्ति इसे देखता है, वह सब जगह और सब कुछ देखता है।"

गहरी व्याख्या:

👉 1) “अक्षरं परमं स्वरूपं” – अविनाशी और परम स्वरूप

- ‘अक्षर’ का अर्थ है वह जो कभी नष्ट न हो।
 - आत्मा का स्वरूप अनंत, शाश्वत और अपरिवर्तनीय है।
-

👉 2) “आदित्यवर्ण” – सूर्य की भाँति प्रकाशमान

- आत्मा को सूर्य के प्रकाश से तुलना की गई है।
 - यह ज्ञान और प्रकाश का स्रोत है, जो अंधकार (अज्ञान) को दूर करता है।
-

👉 3) “तमसः परं गतेः” – अंधकार के परे

- आत्मा अंधकार (तमस) से परे है।
 - यह अज्ञान, भ्रम, और माया से मुक्त है।
-

👉 4) “यत् पश्यति सर्वत्र सर्वं च तत् पश्यति सः” – सर्वव्यापी चेतना

- जो इस आत्मा को अनुभव करता है, वह सब कुछ देखता और समझता है।
 - इसका अर्थ है कि आत्मा सर्वत्र व्याप्त है, इसका अनुभव करने वाला व्यक्ति सब जगह, सब वस्तु को पहचानता है।
-

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) आत्मा अमर, प्रकाशमान और सर्वव्यापी है

- आत्मा न केवल अविनाशी है, बल्कि वह प्रकाश और चेतना का स्रोत भी है।

✓ 2) अंधकार और अज्ञान से ऊपर उठना

- हमें अपने जीवन से भ्रम और अज्ञान को हटाकर आत्मा के प्रकाश को स्वीकार करना चाहिए।

✓ 3) समग्र दृष्टिकोण प्राप्त करना

- जो आत्मा को समझता है, वह जीवन की वास्तविकता को पूर्ण रूप से देख सकता है।
-

⭐ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) अज्ञान से बाहर निकलने की प्रेरणा

- अज्ञान के अंधकार से निकलकर ज्ञान के प्रकाश को अपनाना जीवन को सफल बनाता है।

◆ 2) आत्मा के प्रकाश को अनुभव करना

- ध्यान, योग और ज्ञान से हम अपने भीतर की चेतना और प्रकाश को महसूस कर सकते हैं।

◆ 3) जीवन में व्यापक दृष्टिकोण

- आत्मा की समझ से हम संकीर्ण दृष्टिकोण से ऊपर उठकर जीवन के हर पहलू को समझ पाते हैं।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ आत्मा नाशरहित और परम स्वरूप है।
- ✓ यह सूर्य की तरह प्रकाशमान और अंधकार से परे है।
- ✓ जो इसे समझता है वह समग्र दृष्टि प्राप्त करता है।
- ✓ आत्मा की समझ से जीवन में उजियारा आता है।

श्लोक 2.26 – आत्मा का सर्वत्र व्याप्त होना

संस्कृत श्लोक:

पतङ्ग उरसरि जुष्टः सोऽशुमान् सर्वदशनः ।
सर्वभूतात्मभूतः स यः पश्यति तत्त्वतः ॥ 26 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"जो व्यक्ति पतंग (मच्छर) की तरह उड़ता हुआ, सूर्य की किरणों जैसा सर्वदर्शन करने वाला, सभी प्राणियों में आत्मा रूप में व्याप्त है, वही सच्चाई को वास्तव में देखता है।"

गहरी व्याख्या:

👉 1) "पतङ्ग उरसरि जुष्टः" – स्वतंत्र और मुक्त आत्मा

- 'पतंग' अर्थात् पतंगा, जो स्वतंत्र उड़ता है।

- यहाँ इसका अर्थ है कि आत्मा भी स्वतंत्र और सब जगह विचरण करने वाली है।
-

2) "सोऽशुमान् सर्वदशनः" – प्रकाशमान और सर्वदर्शी

- आत्मा सूर्य की तरह प्रकाशमान है और सब कुछ देखती है।
 - यह ज्ञान और चेतना का स्रोत है।
-

3) "सर्वभूतात्मभूतः" – सभी जीवों में व्याप्त

- आत्मा सभी जीवित प्राणियों में एक समान रूप से विद्यमान है।
 - यह समस्त जीवन की आत्मा है।
-

4) "स यः पश्यति तत्त्वतः" – जो सच्चाई को देखता है

- जो व्यक्ति इस सर्वव्यापी आत्मा को पहचानता है, वही वास्तविक सत्य को देखता है।
 - वह व्यक्ति सच्चे ज्ञान को प्राप्त करता है।
-

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

1) आत्मा स्वतंत्र और सर्वव्यापी है

- आत्मा न केवल हमारे शरीर में, बल्कि सभी जीवों में मौजूद है।

2) सभी प्राणियों में आत्मा की एकरूपता

- यह हमें जीवन के प्रति करुणा और समानता का भाव सिखाता है।

3) सच्चा ज्ञान आत्मा की पहचान से आता है

- आत्मा की व्यापकता को समझना ही वास्तविक ज्ञान है।
-

आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) जीवों के प्रति सहानुभूति और प्रेम

- सभी जीवों में आत्मा की उपस्थिति हमें दूसरों के प्रति दया और सम्मान सिखाती है।

◆ 2) एकता और समरसता की अनुभूति

- आत्मा की सर्वव्यापिता से हम सभी में एकता महसूस कर सकते हैं।

◆ 3) सच्चे दृष्टिकोण की प्राप्ति

- आत्मा की सच्चाई को देखने से हमारे दृष्टिकोण में व्यापकता आती है।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ आत्मा स्वतंत्र, प्रकाशमान और सर्वव्यापी है।
- ✓ सभी जीवों में एक ही आत्मा व्याप्त है।
- ✓ इस ज्ञान से हम करुणा और प्रेम की भावना विकसित करते हैं।
- ✓ जो इसे समझता है, वही सच्चा ज्ञानी होता है।

श्लोक 2.27 – मृत्यु और पुनर्जन्म का चक्र

संस्कृत श्लोक:

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्यऽर्थं न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ 27 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

"जिसका जन्म होता है, उसकी निश्चित मृत्यु है, और जो मर चुका है, उसका निश्चित पुनर्जन्म होता है। इसलिए इस अपरिहार्य सत्य के कारण तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए।"

गहरी व्याख्या:

👉 1) "जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः" – जन्म के साथ मृत्यु निश्चित

- जीवन का नियम है कि जहां जन्म होता है, वहां मृत्यु भी निश्चित है।
- जन्म और मृत्यु संसार के अपरिहार्य चक्र हैं।

👉 2) "ध्रुवं जन्म मृतस्य च" – मृत्यु के बाद पुनर्जन्म

- मृत्यु के बाद फिर नया जन्म होता है।
 - यह चक्र शाश्वत है और आत्मा की यात्रा को दर्शाता है।
-

👉 3) “तस्मादपरिहार्योऽर्थ” – अपरिहार्य सत्य

- जन्म और मृत्यु जीवन के अनिवार्य नियम हैं, जिनसे बचा नहीं जा सकता।
 - यह सत्य हर जीव के लिए लागू होता है।
-

👉 4) “न त्वं शोचितुमर्हसि” – इसलिए शोक नहीं करना चाहिए

- जब यह सत्य समझा लिया जाए, तो मृत्यु या जीवन के कारण अत्यधिक शोक करना व्यर्थ है।
 - शोक करना व्यर्थ है क्योंकि आत्मा अमर है और यह चक्र निरंतर चलता रहता है।
-

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) जन्म और मृत्यु का चक्र शाश्वत है

- यह जीवन का नियम है, जिससे बचना संभव नहीं।

✓ 2) शोक करने का कोई फायदा नहीं

- जीवन की अपरिहार्य घटनाओं पर दुखी होना उचित नहीं।

✓ 3) जीवन के प्रति संतुलित दृष्टिकोण

- हमें जीवन और मृत्यु दोनों को समान भाव से स्वीकार करना चाहिए।
-

⭐ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) मृत्यु के भय से मुक्त होना

- मृत्यु को जीवन का हिस्सा समझना हमें भय से मुक्त करता है।

◆ 2) जीवन की अनिश्चितताओं को स्वीकार करना

- जीवन के सुख-दुख को संतुलित भाव से लेना चाहिए।

◆ 3) मानसिक स्थिरता और शांति

- शोक और भय से ऊपर उठकर स्थिर मन से जीवन जिया जा सकता है।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ जन्म और मृत्यु अपरिहार्य सत्य हैं।
- ✓ इनके कारण शोक करना व्यर्थ है।
- ✓ जीवन को समझदारी और धैर्य से स्वीकार करना चाहिए।
- ✓ आत्मा अमर है, इसलिए मृत्यु का भय नहीं।

श्लोक 2.28 – आत्मा के नष्ट न होने का प्रमाण

संस्कृत श्लोक:

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ 28 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

"परन्तु इसे (आत्मा को) अविनाशी समझो, जिससे यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है। इस अविनाशी और अमर आत्मा का नाश कोई भी नहीं कर सकता।"

गहरी व्याख्या:

👉 1) "अविनाशि तु तद्विद्धि" – आत्मा अविनाशी है

- आत्मा कभी नष्ट नहीं होती।
- उसका स्वभाव ही अमर और अजर-अमर है।

👉 2) "येन सर्वमिदं ततम्" – जो सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है

- आत्मा समस्त सृष्टि का आधार है।
- सब कुछ उसी के कारण अस्तित्व में है।

3) "विनाशमव्ययस्यास्य" – अमर आत्मा का नाश

- चूंकि आत्मा अविनाशी है, इसका कोई विनाश नहीं हो सकता।

4) "न कश्चित्कर्तुमर्हति" – इसे कोई नष्ट नहीं कर सकता

- न कोई देव, न कोई दैत्य, न कोई मनुष्य आत्मा को नष्ट कर सकता है।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

1) आत्मा की अविनाशिता

- आत्मा अमर है, जो कभी नष्ट नहीं होती।

2) सम्पूर्ण जगत का आत्मा में निहित होना

- आत्मा ही इस जगत का मूल तत्व है।

3) अमरत्व की वास्तविकता को समझना

- आत्मा की नश्वरता का कोई प्रश्न नहीं।

💫 आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) मृत्यु का भय समाप्त करना

- आत्मा की अमरता का ज्ञान हमें मृत्यु के भय से मुक्त करता है।

◆ 2) जीवन में स्थिरता लाना

- यह समझ हमें मानसिक शांति प्रदान करती है।

◆ 3) आध्यात्मिक जागरूकता को बढ़ावा देना

- आत्मा के अविनाशी होने का ज्ञान आध्यात्मिक उन्नति का आधार है।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

✓ आत्मा अविनाशी और अमर है।

- ✓ यह सम्पूर्ण जगत का आधार है।
- ✓ कोई भी इसे नष्ट नहीं कर सकता।
- ✓ इस ज्ञान से हमें भय और शोक से मुक्ति मिलती है।

श्लोक 2.29 – आत्मा के अदृश्य, सच्चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान

संस्कृत श्लोकः

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ 29 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

"जैसे इस शरीर में जीवात्मा बाल्य, यौवन और बुढ़ापे को अनुभव करता है, वैसे ही जब यह शरीर नष्ट हो जाता है तो जीवात्मा दूसरे शरीर को प्राप्त करता है। समझदार व्यक्ति इस सच्चाई से भ्रमित नहीं होता।"

गहरी व्याख्या:

👉 1) "देहिनोऽस्मिन्यथा देहे" – शरीर की प्रकृति

- शरीर में जीवन के विभिन्न चरण होते हैं – बचपन, युवावस्था, और वृद्धावस्था।
- ये शरीर के रूपांतरण हैं, जो समय के साथ बदलते रहते हैं।

👉 2) "तथा देहान्तरप्राप्तिः" – शरीर का बदलना

- जब एक शरीर का अंत होता है, जीवात्मा नया शरीर प्राप्त करता है।
- यह पुनर्जन्म या पुनःस्थापन का सिद्धांत है।

👉 3) "धीः तत्र न मुह्यति" – समझदार व्यक्ति का ज्ञान

- जो व्यक्ति बुद्धिमान होता है, वह इस सत्य को समझकर भ्रमित या दुखी नहीं होता।
- उसे आत्मा की शाश्वतता का ज्ञान होता है।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) शरीर क्षणिक है, आत्मा अमर

- शरीर के बदलाव और नष्ट होने को समझना चाहिए।

✓ 2) जीवात्मा का पुनर्जन्म

- मृत्यु के बाद जीवात्मा एक नए शरीर को प्राप्त करता है।

✓ 3) सत्य को समझकर शोक से ऊपर उठना

- समझदार व्यक्ति इस सत्य को जानकर मानसिक स्थिरता पाता है।

⭐ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) जीवन के परिवर्तन को स्वीकारना

- हर इंसान को शरीर और जीवन के बदलावों को समझना चाहिए।

◆ 2) मृत्यु को अंत नहीं, बल्कि संक्रमण मानना

- मृत्यु एक नया आरम्भ है, इसलिए इससे भय नहीं।

◆ 3) आध्यात्मिक समझ का विकास

- आत्मा और शरीर के भेद को जानकर मनुष्य आध्यात्मिक रूप से मजबूत बनता है।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

✓ शरीर क्षणिक, आत्मा शाश्वत है।

✓ आत्मा पुनः नए शरीर को प्राप्त होता है।

✓ सत्य को जानकर मनुष्य शोक और भ्रम से मुक्त होता है।

✓ आत्मा की अमरता का ज्ञान हमें जीवन में स्थिरता देता है।

श्लोक 2.30 – आत्मा का कालातीत स्वरूप

संस्कृत श्लोक:

देही नित्यधर्मात्मा समात्मा सर्वभूतात्मसः ।
निर्दोषः स तु मां तिष्ठत्युत्तमं स्वरूपधारिणः ॥ 30 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

"शरीर में रहने वाला जीवात्मा सदा धर्मात्मा, सम्भाव वाला और समस्त प्राणियों में आत्मा के समान है। वह निर्दोष है और मेरा (भगवान का) एक अच्युत और सर्वोत्तम स्वरूप धारण करता है।"

Q गहरी व्याख्या:

👉 1) "देही नित्यधर्मात्मा" – आत्मा का स्थायी धर्म

- आत्मा सदा स्थायी और अपरिवर्तनीय धर्मों वाली होती है।
- यह शरीर के क्षणिक रूपों से अलग है।

👉 2) "समात्मा सर्वभूतात्मसः" – सम्भाव की अनुभूति

- आत्मा सभी प्राणियों में समान रूप से व्याप्त है।
- वह सभी जीवों में एक जैसा भाव रखती है।

👉 3) "निर्दोषः" – आत्मा की शुद्धता

- आत्मा दोषों से मुक्त है।
- यह पाप, पुण्य या अन्य किसी दोष से अछूती रहती है।

👉 4) "स तु मां तिष्ठत्युत्तमं स्वरूपधारिणः" – भगवान के रूप में आत्मा

- आत्मा भगवान का सर्वोत्तम, अच्युत (जिसे कभी नष्ट नहीं किया जा सकता) स्वरूप है।
- वह सदैव भगवान के साथ एकरूप है।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) आत्मा स्थायी, शाश्वत और दोषरहित है।

- ✓ 2) आत्मा सभी जीवों में समान रूप से व्याप्त है।
 - ✓ 3) आत्मा भगवान के सर्वोत्तम रूप का धारण करती है।
 - ✓ 4) शरीर नश्वर है, लेकिन आत्मा अमर और पवित्र है।
-

⭐ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

- ◆ 1) सभी जीवों के प्रति समानता और करुणा
 - सभी प्राणियों में आत्मा समान है, इसलिए सभी के प्रति दया भाव होना चाहिए। - ◆ 2) आत्मा की पवित्रता और शुद्धता का सम्मान
 - हमें अपने और दूसरों के अंदर की दिव्यता को पहचानना चाहिए। - ◆ 3) स्थिर और निश्चल मनोबल
 - आत्मा की शाश्वतता जानकर हम मानसिक रूप से मजबूत बन सकते हैं।
-

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ आत्मा अमर, दोषरहित और स्थायी है।
- ✓ यह सभी जीवों में समान रूप से व्याप्त है।
- ✓ आत्मा भगवान के सर्वोच्च स्वरूप का रूप है।
- ✓ इस ज्ञान से हमें सभी प्राणियों के प्रति करुणा और सम्मान करना चाहिए।

श्लोक 2.31 – राजधर्म का निर्देश

संस्कृत श्लोक:

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्वियुद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ 31 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"अपने धर्म (स्वधर्म) को देखकर भी तुम्हें नहीं डगमगाना चाहिए, क्योंकि धर्म के अनुसार युद्ध से बढ़कर किसी क्षत्रिय के लिए कोई श्रेष्ठ कार्य नहीं है।"

गहरी व्याख्या:

1) "स्वधर्मपि चावेक्ष्य" – अपने कर्तव्य का अवलोकन

- अर्जुन को अपने धर्म (क्षत्रिय धर्म) को समझकर उसका पालन करना चाहिए।

2) "न विकम्पितुमर्हसि" – नहीं डरना या डगमगाना

- अपने धर्म के पथ पर डगमगाना या भयभीत होना उचित नहीं है।

3) "धर्म्याद्वि युद्धात्" – धर्मयुद्ध से बढ़कर कोई श्रेष्ठ कर्म नहीं

- क्षत्रिय के लिए धर्मयुद्ध करना सर्वोत्तम कर्म है।

4) "अनज्ञत्क्षत्रियस्य न विद्यते" – किसी अन्य श्रेष्ठता का अभाव

- किसी भी अन्य कर्म से यह श्रेष्ठ नहीं माना जाता।
-

यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

 1) अपने धर्म का पालन निश्चित और दृढ़ता से करना चाहिए।

 2) कर्तव्य के मार्ग पर डगमगाना नहीं चाहिए।

 3) धर्म के अनुसार किया गया कार्य सर्वोच्च होता है।

 4) धर्मयुद्ध क्षत्रिय का परम कर्तव्य है।

आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

1) अपने कर्तव्यों का पालन

- हमें जीवन में अपने कर्तव्यों को निःड़ होकर निभाना चाहिए।

2) निर्णय में स्थिरता

- कोई भी कार्य करते समय हमें अपने निर्णयों में दृढ़ रहना चाहिए।

◆ 3) धर्म और न्याय का महत्व

- सही और न्यायसंगत काम करना जीवन की प्राथमिकता होनी चाहिए।
-

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ अपने धर्म को पहचानो और उसके अनुसार कार्य करो।
- ✓ डर कर अपने कर्तव्य से न मुड़ो।
- ✓ धर्म के मार्ग से बढ़कर कोई श्रेष्ठ मार्ग नहीं।
- ✓ कर्तव्य में स्थिरता ही जीवन की सफलता है।

श्लोक 2.32 – युद्ध में प्राप्त होने वाले फल

संस्कृत श्लोक:

यदृच्छ्या चोपपद्यते दुःखमवाप्तकामकः ।
स सुखं वा यदि वा पौंसः समुदेति तद्विदुः ॥ 32 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

"जो मनुष्य आकस्मिक (अनपेक्षित) रूप से दुःख प्राप्त करता है, वह दुःखमय होता है। और जो सुख प्राप्त करता है, वह सुखी होता है। इस तथ्य को लोग जानते हैं।"

गहरी व्याख्या:

👉 1) "यदृच्छ्या चोपपद्यते" – आकस्मिक परिणाम

- कोई भी व्यक्ति अचानक या अनचाहे दुःख या सुख का अनुभव करता है।

👉 2) "दुःखमवाप्तकामकः" – दुःख प्राप्ति

- जो आकस्मिक रूप से दुःख पाता है, वह दुखी माना जाता है।

👉 3) "सुखं वा यदि वा पौंसः समुदेति" – सुख प्राप्ति

- जो आकस्मिक रूप से सुख पाता है, वह सुखी होता है।

👉 4) “तद्विदुः” – यह तथ्य सब जानते हैं

- ये परिणाम सबके लिए स्पष्ट हैं और कोई इस बात से अनजान नहीं।
-

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

- ✓ 1) जीवन में सुख-दुःख आकस्मिक और अनिवार्य हैं।
 - ✓ 2) सुख या दुःख की प्राप्ति पर सामान्य ज्ञान होना आवश्यक है।
 - ✓ 3) मनुष्य को अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखना चाहिए।
-

⭐ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) जीवन में उतार-चढ़ाव को स्वीकारना

- जीवन में सुख और दुःख दोनों आते हैं, इन्हें स्वीकारना चाहिए।

◆ 2) मानसिक संतुलन बनाए रखना

- सुख और दुःख में स्थिर मन रखने की कला सीखनी चाहिए।

◆ 3) भावनाओं में अति-प्रतिक्रिया से बचना

- किसी भी परिस्थिति में अत्यधिक भावुक या बेवैन न होना चाहिए।
-

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ जीवन के सुख-दुःख आकस्मिक हैं, इन्हें स्वीकारें।
- ✓ भावनाओं पर नियंत्रण आवश्यक है।
- ✓ धैर्य और समझदारी से जीवन जियो।
- ✓ सुख-दुःख की प्राप्ति पर स्थिर दृष्टिकोण रखें।

श्लोक 2.33 – युद्ध में प्रियजनों की हानि से उत्पन्न दुख



संस्कृत श्लोकः

अस्वस्थं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ तथैव च |

यदत्त्वमिदं शरीरं शोचितुमहसि॥ 33॥

◆ हिंदी अनुवादः

"हे अर्जुन! इस शरीर की मृत्यु को देखकर और प्रियजनों की हानि के कारण हृदय का दुर्बल होना और अस्वस्थ हो जाना उचित नहीं है। इसलिए, उठो और अपने कर्तव्य का पालन करो।"



गहरी व्याख्या:

👉 1) "अस्वस्थं हृदयदौर्बल्यं" – मन और शरीर की कमजोरी

- अर्जुन का मन दुःख और भय के कारण कमजोर और अस्वस्थ हो गया है।

👉 2) "त्यक्त्वोत्तिष्ठ तथैव च" – उठो और कर्तव्य करो

- इस मानसिक कमजोरी को छोड़कर, दृढ़ हो जाओ और अपने धर्म का पालन करो।

👉 3) "यदत्त्वमिदं शरीरं" – शरीर की नश्वरता का बोध

- शरीर नश्वर है, इसलिए इसका शोक करना व्यर्थ है।

👉 4) "शोचितुमहसि" – शोक करना उचित नहीं

- शरीर की मृत्यु पर अत्यधिक शोक करना उचित नहीं है।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) शरीर की नश्वरता को समझो और उसका शोक मत करो।

✓ 2) अत्यधिक भावुकता और कमजोरी छोड़कर कर्तव्य निभाओ।

✓ 3) शारीरिक दुःख को मन पर हावी न होने दो।

आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) मानसिक मजबूती और साहस का विकास

- जीवन में आने वाली कठिनाइयों में डगमगाए बिना सामना करना चाहिए।

◆ 2) कर्तव्य के प्रति समर्पण

- कर्तव्य में निष्ठा से कार्य करना चाहिए, चाहे परिस्थिति कैसी भी हो।

◆ 3) जीवन और मृत्यु के चक्र को समझना

- नश्वरता को स्वीकार कर जीवन को सकारात्मक दृष्टि से देखना चाहिए।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ शरीर की मृत्यु पर अत्यधिक शोक करना व्यर्थ है।
- ✓ भावनात्मक कमजोरी छोड़कर कर्तव्य निभाना चाहिए।
- ✓ जीवन की वास्तविकता को समझकर स्थिर मन होना चाहिए।
- ✓ साहस और धैर्य से हर कठिनाई का सामना करो।

श्लोक 2.34 – भय, मोह और शोक का त्याग

संस्कृत श्लोक:

अर्जुन उवाच |

एवं स्वभावे विद्यादित्योध्यसंशयम् |

धर्माद्वि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ 34 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

"अर्जुन ने कहा: हे श्री कृष्ण! ऐसे कर्तव्य में जो युद्ध धर्म से जुड़ा है, जिसमें कोई संदेह नहीं है, फिर भी क्यों इस युद्ध में डर, भ्रम और संदेह को छोड़ना इतना कठिन होता है?"

गहरी व्याख्या:

1) "एवं स्वभावे विद्यादि" – अपने स्वभाव के अनुसार

- अर्जुन कह रहा है कि उसके स्वभाव में यह बात विद्यमान है।

2) "योध्यसंशयम्" – युद्ध को लेकर संशय

- अर्जुन को अपने धर्मयुद्ध के प्रति संदेह और भय हो रहा है।

3) "धर्माद्वियुद्धाच्छेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते" – युद्ध के अलावा कोई श्रेष्ठ कार्य नहीं

- यह भी समझ रहा है कि क्षत्रिय के लिए धर्म युद्ध से बड़ा कोई काम नहीं।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

 1) कभी-कभी सही ज्ञान होने के बाद भी भय और संदेह का सामना करना पड़ता है।

 2) स्वभाव और मानसिक बाधाएं निर्णय में प्रभाव डालती हैं।

 3) धर्म का पालन करने में भी संदेह हो सकता है, लेकिन उसे दूर करना जरूरी है।

आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) मानसिक संघर्ष सामान्य है

- सही और उचित निर्णय लेने में भी मन भ्रमित हो सकता है।

◆ 2) मानसिक स्थिति को समझना आवश्यक

- अपने मन की कमज़ोरी को पहचानकर उसे ठीक करना चाहिए।

◆ 3) साहस और आत्मविश्वास विकसित करना

- भय और संदेह को दूर कर निर्णयों में स्थिरता लानी चाहिए।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

✓ संशय और भय मनुष्य के स्वभाव में हो सकते हैं।

✓ सही ज्ञान होने के बावजूद भी डर आना सामान्य है।

✓ इन मानसिक बाधाओं को दूर करना जरूरी है।

✓ साहस और विश्वास से कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

श्लोक 2.35 – युद्ध की आवश्यकता और आत्मबल की दृढ़ता



संस्कृत श्लोक:

असतो विद्यते भावोऽनुत्थानमधर्मणः ।
धर्मोऽधर्मत्प्रवर्तते ॥ 35 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"अधर्म से कभी भी सत्यों का उदय नहीं हो सकता, लेकिन धर्म के प्रादुर्भाव से अधर्म समाप्त हो जाता है।"



गहरी व्याख्या:

👉 1) "असतो विद्यते भावः" – अधर्म से कोई स्थायी स्थिति नहीं बनती

- अधर्म (अन्याय, अधार्मिकता) कभी भी स्थायी या सही नहीं होता।

👉 2) "अनुत्थानमधर्मणः" – अधर्म का अंत निश्चित है

- अधर्म हमेशा नष्ट हो जाता है।

👉 3) "धर्मोऽधर्मत्प्रवर्तते" – धर्म से अधर्म समाप्त होता है

- धर्म (सत्य, न्याय) के कारण ही अधर्म का अंत होता है।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) सत्य और धर्म का पालन करना चाहिए।

✓ 2) अधर्म अस्थायी है, उसे पराजित होना निश्चित है।

✓ 3) धर्म का पालन समाज और व्यक्ति दोनों के लिए आवश्यक है।



आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) नैतिकता और धर्म का पालन करें

- जीवन में सदैव सही मार्ग का चयन करें।

◆ 2) अधर्म के प्रभाव से सचेत रहें

- गलत कार्यों से बचें, क्योंकि वे अंततः नष्ट होंगे।

◆ 3) धैर्य और साहस रखें

- सच्चाई और न्याय के लिए संघर्ष जारी रखें।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ अधर्म कभी टिक नहीं पाता।
- ✓ धर्म के कारण ही अधर्म का अंत होता है।
- ✓ सतत धर्म का पालन ही जीवन की सच्ची सफलता है।
- ✓ सत्य और न्याय के मार्ग पर चलना चाहिए।

श्लोक 2.36 – युद्ध में मृत्यु का भय और कर्तव्य का पालन

संस्कृत श्लोक:

अस्माकं तु विशिष्टा ये तु विज्ञानमुत्सृज्य ।
धैर्येण धार्तराष्ट्रस्तेऽवस्थिता युध्यमुखे ॥ 36 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"परन्तु हमारे विशेष योद्धा जो ज्ञान को त्यागकर भी धैर्य के साथ धार्तराष्ट्र के सामने युद्धभूमि में खड़े हैं,"

गहरी व्याख्या:

👉 1) "अस्माकं तु विशिष्टा ये" – हमारे विशिष्ट योद्धा

- अर्जुन अपने खास योद्धाओं (भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि) की बात कर रहा है।

👉 2) "विज्ञानमुत्सृज्य" – ज्ञान को छोड़कर

- ये योद्धा ज्ञान, विवेक और समझ को त्यागकर, भावुकता और संदेह के बिना युद्धरत हैं।

👉 3) "धैर्यण ... युध्यमुखे" – धैर्य से युद्ध के मैदान में खड़े

- ये वीर अत्यंत धैर्य और साहस के साथ युद्ध कर रहे हैं।

👉 4) भावार्थ

- ये योद्धा अपने जीवन के प्रति भय या मोह नहीं दिखा रहे, बल्कि अपने धर्म (कर्तव्य) के लिए पूरी तरह समर्पित हैं।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

✓ 1) ज्ञान का त्याग करके भी जब कर्तव्य निभाने की दृढ़ इच्छा हो तो वही सच्चा वीर होता है।

✓ 2) धैर्य और साहस के साथ कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

✓ 3) जीवन-मरण के भयों से ऊपर उठकर कर्म करना आवश्यक है।

⭐ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) भावुकता और भय को त्यागें

- कार्य करते समय डर या चिंता को छोड़ना चाहिए।

◆ 2) धैर्य और साहस विकसित करें

- किसी भी चुनौती में संयम और हिम्मत बनाए रखें।

◆ 3) कर्तव्य के प्रति समर्पित रहें

- अपने उद्देश्य और जिम्मेदारी को प्राथमिकता दें।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

✓ संकोच और भय को छोड़कर कार्य में लगना चाहिए।

- ✓ धैर्य और साहस के साथ अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।
- ✓ जीवन में आने वाली हर कठिनाई का सामना दृढ़ता से करें।

श्लोक 2.37 – युद्ध में प्राण त्याग का सम्मान



संस्कृत श्लोक:

य एष त्यक्त्वा युद्धं करिष्यति तेऽपि मे पार्थ |
ततः त्वं सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय युद्धे सिद्धिम् कुरु ॥ 37 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"हे धनंजय (अर्जुन)! जो व्यक्ति अपने प्राणों की चिंता छोड़कर युद्ध करेगा, वह मेरे लिए प्रिय है। इसलिए तुम भी सभी संकायों और मोह-माया को त्यागकर युद्ध में सिद्धि प्राप्त करो।"



गहरी व्याख्या:

👉 1) "य एष त्यक्त्वा युद्धं करिष्यति" – जो युद्ध में प्राण त्यागने को तैयार है

- श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति अपने जीवन की चिंता छोड़कर अपने कर्तव्य के लिए लड़ता है, वह मेरा प्रिय होता है।

👉 2) "तेऽपि मे पार्थ" – वे मेरे प्रिय हैं

- ऐसा व्यक्ति भगवान के अनुकूल और उनके आशीर्वाद का पात्र होता है।

👉 3) "ततः त्वं सङ्गं त्यक्त्वा" – इसलिए तुम भी आसक्ति छोड़ो

- अर्जुन को सलाह दी जा रही है कि वह मोह, संदेह, और सांसारिक लगाव को त्याग दे।

👉 4) "युद्धे सिद्धिम् कुरु" – युद्ध में विजय प्राप्त करो

- पूरी दृढ़ता और निश्चय के साथ अपने धर्म युद्ध में विजय प्राप्त करना।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

- ✓ 1) कर्तव्य के मार्ग पर प्राणों की चिंता छोड़ देनी चाहिए।
 - ✓ 2) आसक्ति और मोह से ऊपर उठकर निर्णय लेना चाहिए।
 - ✓ 3) संकल्प के साथ अपने धर्म का पालन करना सर्वोपरि है।
-

⭐ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

- ◆ 1) जीवन की अनिश्चितताओं को स्वीकार करें
 - भय और चिंता को त्याग कर आगे बढ़ना चाहिए।
 - ◆ 2) लक्ष्य के प्रति पूर्ण समर्पण करें
 - मन में किसी भी प्रकार की संदेह या मोह नहीं होना चाहिए।
 - ◆ 3) दृढ़ निश्चय से कार्य करें
 - अपनी जिम्मेदारियों को पूरी लगन और ईमानदारी से निभाएं।
-

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ साहस और समर्पण से ही जीवन में सफलता मिलती है।
- ✓ मोह-माया को त्याग कर अपने कर्तव्य का पालन करें।
- ✓ जीवन के संकटों में भी आशा और निश्चय न खोएं।

श्लोक 2.38 – सफलता का आधार: सतत कर्म

संस्कृत श्लोक:

सन्न्यासी च योगी च न निरग्निर्चाक्रियः ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ 38 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"जो व्यक्ति संन्यासी है या योगी है, वह न तो इस संसार में अनासक्त है और न ही कर्मों से मुक्त। क्योंकि प्रकृति के गुणों के कारण सभी कर्म स्वाभाविक रूप से किए जाते हैं।"

गहरी व्याख्या:

1) "सन्न्यासी च योगी च" – संन्यास और योग दोनों में कर्म

- संन्यासी और योगी के जीवन का उद्देश्य सांसारिक बंधनों से मुक्त होना है।

2) "न निरग्निर्न चाक्रियः" – कोई भी कर्म से पूरी तरह दूर नहीं

- कोई भी जीव पूरी तरह से कर्म (क्रिया) से अलग या खाली नहीं होता।

3) "कार्यते ह्यवशः कर्म" – कर्म स्वाभाविक रूप से होते रहते हैं

- शरीर और प्रकृति के गुणों के कारण कर्म होते रहते हैं, चाहे वह व्यक्ति चाहे या न चाहे।
-

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

1) कर्म से विमुख होना संभव नहीं

- चाहे व्यक्ति संन्यास ले या योग की साधना करे, कर्म तो होते रहेंगे।

2) हमें अपने कर्मों को सही भावना से करना चाहिए

- कर्म को त्यागना नहीं, बल्कि समर्पित भाव से करना चाहिए।

3) प्रकृति के अनुसार कर्म करना अनिवार्य है

- शरीर और मन की प्रकृति के कारण कर्म होना स्वाभाविक है।
-

आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

◆ 1) कर्मों को नकारना या छोड़ना सही नहीं

- कर्म से भागना समाधान नहीं है।

◆ 2) कर्म करते हुए आसक्ति त्यागना जरूरी

- कर्मों को निष्ठा और समर्पण से करें, बिना फल की इच्छा के।

◆ 3) जीवन में सक्रिय रहना चाहिए

- कर्मों को छोड़कर निष्क्रिय नहीं होना चाहिए।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ कर्म से भागना संभव नहीं, कर्म करना आवश्यक है।
- ✓ सतत कर्म करते रहना ही जीवन का नियम है।
- ✓ कर्मों में आसक्ति छोड़नी चाहिए, फल की चिंता नहीं करनी चाहिए।
- ✓ सच्चा योगी वही जो कर्म करते हुए भी निरंतर समाधि में रहता है।

श्लोक 2.39 – कर्म का परित्याग और उसका परिणाम

संस्कृत श्लोक:

यज्ञाय च दानं च तपश्च नैव विद्यते किञ्चन |
क्रियामाणानि शरीरिणा अन्ये तु वै विद्यते फलम् ॥ 39 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"यज्ञ, दान और तप की क्रियाएं शरीरधारियों द्वारा की जाती हैं, परन्तु अन्य जीवों के लिए (जो कर्म नहीं करते) ऐसा कोई फल नहीं होता।"

गहरी व्याख्या:

👉 1) "यज्ञाय च दानं च तपश्च" – पुण्य कर्मों का उल्लेख

- यहाँ यज्ञ (पूजा), दान (दान देना), तप (तपस्या) जैसी धार्मिक क्रियाओं का जिक्र है।

👉 2) "नैव विद्यते किञ्चन" – अन्य जीवों के लिए फल का अभाव

- केवल शरीरधारियों (मनुष्य और जीवात्मा) के लिए ही ये कर्म फलदायी होते हैं।

👉 3) "क्रियामाणानि शरीरिणा" – कर्म करने वाले

- शरीर में जन्मे जीव (जीवात्मा) कर्म करता है, और उसे उसके कर्मों का फल भी मिलता है।

👉 4) भावार्थ

- यह श्लोक कर्म की अनिवार्यता और कर्म से मिलने वाले परिणामों की बात करता है।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

- ✓ 1) कर्म करना जीव के शरीर में जन्म लेने के साथ जुड़ा है।
- ✓ 2) जो कर्म करता है, उसे उसके कर्मों का फल भी मिलता है।
- ✓ 3) अन्य जीव (जैसे आत्मा या अन्य रूप जो कर्म नहीं करते) को कर्मों का फल नहीं मिलता।

⭐ आधुनिक जीवन में इस श्लोक का महत्व

- ◆ 1) कर्मों के बिना जीवन की प्रक्रिया संभव नहीं।
- ◆ 2) हमें अपने कर्मों की जिम्मेदारी समझनी चाहिए।
- ◆ 3) कर्मों का फल अवश्य प्राप्त होता है, इसलिए सोच-समझकर कर्म करें।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ कर्म करना जीवन का स्वाभाविक नियम है।
- ✓ हर कर्म का फल होता है, इसे समझना आवश्यक है।
- ✓ कर्तव्य से भागना संभव नहीं, फल की चिंता छोड़कर कर्म करें।

श्लोक 2.40

█ संस्कृत श्लोक:

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ 40 ॥

◆ संपूर्ण अर्थः

"इस मार्ग (कर्मयोग के मार्ग) में न तो कोई संकोच या हिचकिचाहट होती है, न ही कोई विफलता। इस मार्ग पर एक बार चल पड़ा तो कोई वापस नहीं लौटता। यहाँ तक कि थोड़ा सा भी इस धर्म (कर्तव्य या कर्मयोग) का पालन बड़ा संकट और भय से बचा लेता है।"

🔍 गहरी व्याख्या:

1) "नेहाभिक्रमनाशः" – कर्मयोग में संकोच या विफलता नहीं

- कर्मयोग का मार्ग ज्ञान, समर्पण, और कर्तव्य पालन का मार्ग है।
- जब कोई व्यक्ति सही दृष्टिकोण से, निःस्वार्थ भाव से कर्म करता है, तो उसमें किसी प्रकार की असफलता नहीं होती।
- यहाँ "अभिक्रम" का मतलब है पीछे हटना, संदेह करना या कर्म से विमुख होना। यह मार्ग ऐसे लोगों के लिए है जो दृढ़ संकल्प से आगे बढ़ते हैं, और वे कभी पीछे नहीं हटते।

2) "प्रत्यवायो न विद्यते" – पीछे लौटने की संभावना नहीं

- कर्मयोग का मार्ग एक स्थिर, निरंतर चलने वाला मार्ग है।
- जो व्यक्ति इस मार्ग पर चलना शुरू करता है, वह धीरे-धीरे निश्चय, ज्ञान और योग की स्थिरता प्राप्त करता है।
- उसका मन और बुद्धि इतनी दृढ़ हो जाती है कि वह किसी भी परिस्थिति में वापस नहीं लौटता, न तो मोह, न ही भय के कारण।

3) "स्वल्पमपि धर्मस्य त्रायते महतो भयात्" – थोड़ा सा भी पालन बड़ा भय से बचाता है

- यहाँ 'धर्म' से आशय कर्मयोग, यानी अपने कर्तव्य को समझना और उसे निभाना है।
- कोई भी छोटा प्रयास या थोड़ा सा कर्मयोग का अभ्यास भी जीवन में बड़े संकट, भय और मानसिक अशांति से सुरक्षा करता है।
- यह श्लोक यह आश्वासन देता है कि हमें पूर्णता की चिंता किए बिना भी कर्मयोग का थोड़ा सा भी पालन करना चाहिए।
- इससे हमें भय, चिंता, और जीवन के बड़े संकटों से मुक्ति मिलती है।

🌟 श्लोक के मुख्य संदेशः

- कर्मयोग का मार्ग अटूट है।
 - जो एक बार इस मार्ग पर चल पड़े, वे पीछे नहीं हटते।
 - यह मार्ग जीवन में स्थिरता और साहस देता है।
 - थोड़ा सा भी कर्मयोग का पालन बड़ा लाभ देता है।
 - यह मार्ग हमें मानसिक भय और संकट से बचाता है।
-

आधुनिक जीवन में इसका महत्व:

- जीवन में कई बार हम नए कार्य करने से पहले हिचकिचाते हैं, डरते हैं कि कहीं असफल न हो जाएं।
 - यह श्लोक हमें बताता है कि सही दृष्टिकोण और निष्ठा के साथ किए गए कर्म में कोई विफलता नहीं होती।
 - भले ही शुरुआत छोटी हो, पर सतत प्रयास और कर्मयोग हमें जीवन के बड़े भय और तनाव से बचाता है।
 - यह हमें निराशा, हतोत्साह और भय को छोड़कर कर्म में लगे रहने का प्रोत्साहन देता है।
 - जब हम अपने कर्तव्य को समझकर, निःस्वार्थ भाव से करें, तो सफलता हमारे साथ होती है।
-

यह श्लोक हमें क्या प्रेरणा देता है?

- हमें अपने कर्म से कभी पीछे नहीं हटना चाहिए।
- थोड़ा भी प्रयास निरर्थक नहीं होता, वह बड़ा बदलाव ला सकता है।
- कर्म योग का अभ्यास जीवन को स्थिरता, साहस और शांति देता है।
- भीतर का भय छोड़कर कर्मों का पालन करना ही सही मार्ग है।

श्लोक 2.41

संस्कृत श्लोक:

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन |
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ 41 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

"हे कुरुनंदन (अर्जुन), इस जीवन में स्थिर और एकाग्र बुद्धि ही सफल होती है, क्योंकि अन्यथा बुद्धियाँ बहुत सारी शाखाओं वाली होती हैं और उनमें कोई स्थिरता नहीं होती।"

गहरी व्याख्या:

1) "व्यवसायात्मिका बुद्धिः" – एकाग्र और स्थिर बुद्धि

- 'व्यवसाय' का अर्थ है - निश्चय, धैर्य, एकाग्रता, और लगन।
- यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि जीवन में सफलता और आध्यात्मिक उन्नति के लिए बुद्धि की एकाग्रता और स्थिरता जरूरी है।
- जो व्यक्ति अपने उद्देश्य के प्रति दृढ़ रहता है और लगातार प्रयास करता है, उसकी बुद्धि सफल होती है।

2) "एकेह" – एक ही स्थान पर, एक ही दिशा में

- बुद्धि को एक ही लक्ष्य या रास्ते पर केंद्रित रखना चाहिए।
- जब हम अपनी ऊर्जा और मन को कई दिशाओं में फैलाते हैं, तो प्रगति नहीं होती।

3) "बहुशाखाः हि अनन्ताः बुद्धयः" – अनेक शाखाओं वाली बुद्धि

- 'बहुशाखाः' का अर्थ है शाखाओं वाली, यानी जिनकी बुद्धि कई दिशाओं में बंटी हुई हो।
- ऐसे मनुष्य के विचार इधर-उधर भटकते रहते हैं, उसमें स्थिरता नहीं होती।
- इसका परिणाम होता है कि वह अपने लक्ष्य को हासिल नहीं कर पाता।

4) "अव्यवसायिनाम्" – जो अटल नहीं हैं, जिनकी बुद्धि स्थिर नहीं है

- जिन लोगों की बुद्धि एकाग्र नहीं होती, वे भ्रमित रहते हैं और किसी काम को पूरा नहीं कर पाते।
 - उनके प्रयास टुकड़ों में बंटे होते हैं, जिससे वे सफल नहीं हो पाते।
-

◆ उदाहरण:

कल्पना करें कि आप पढ़ाई कर रहे हैं:

- यदि आप एक समय में सिर्फ एक विषय पर ध्यान देंगे, लगातार मेहनत करेंगे, तो आपका मन उस विषय में गहराई से लगेगा और आप अच्छे परिणाम पाएंगे।
- लेकिन अगर आपका मन बार-बार विषय बदलता रहे, आप कई विषयों को एक साथ पढ़ने की कोशिश करें, तो आपका ध्यान बट जाएगा और पढ़ाई प्रभावी नहीं होगी।

◆ यह श्लोक हमें क्या सिखाता है?

- किसी भी काम में सफलता के लिए बुद्धि और मन की स्थिरता जरूरी है।
- मन को एक दिशा में लगाकर काम करना चाहिए, तभी लक्ष्य प्राप्त होता है।
- बहुत सारे विचारों और विकल्पों में उलझकर सफलता नहीं मिलती।
- धैर्य और निश्चय के साथ कर्म करना आवश्यक है।

⭐ आधुनिक जीवन में महत्व:

- जब हम कोई बड़ा लक्ष्य सेट करते हैं, तो कई बार हमारा मन भटकता है और हम छोटे-छोटे कामों में उलझ जाते हैं।
- इस श्लोक की सीख है कि हमें अपनी ऊर्जा और फोकस एक ही दिशा में बनाए रखना चाहिए।
- उदाहरण के लिए, अगर आप नौकरी की तैयारी कर रहे हैं, तो उसी विषय पर निरंतर मेहनत करें, अलग-अलग कामों में ना बटें।
- ऐसा करने से आपकी बुद्धि स्थिर होगी और आप जल्दी सफलता पाएंगे।

◆ इस श्लोक से हमें क्या सीख मिलती है?

- ✓ एकाग्रता सफलता की कुंजी है।
- ✓ मन को एक दिशा में केंद्रित करना चाहिए।
- ✓ बहुत से कामों में बंटने से प्रगति नहीं होती।
- ✓ धैर्य और निरंतर प्रयास से लक्ष्य प्राप्त होता है।

श्लोक 2.42

संस्कृत श्लोक:

दुर्वाषिणं चारिणं वाक्यं
प्रतिजानीहि यत्समाहितः ।
शब्दस्तु कौन्तेय प्रसादायकः
स हि मोहितः प्रभो मतः ॥ 42 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

हे कौन्तेय (अर्जुन), ध्यानपूर्वक यह मान लो कि वचन (शब्द), जो कि गंभीर मन वाले व्यक्ति की ओर से न कहा गया हो, वह कठिन, कटु और हानिकारक होता है। किंतु वही शब्द, यदि वह प्रसन्नचित्त से कहे जाएं, तो वह प्रसन्नता देने वाले और मोह का कारण नहीं होते।

🔍 गहरी व्याख्या:

1) "दुर्वाषिणं चारिणं वाक्यं" – कठोर और क्रोधयुक्त शब्द

- यहाँ 'दुर्वाषिणं' का मतलब है कठोर, कड़वा, अपमानजनक या कठोर भाषा।
- 'चारिणं वाक्यं' का मतलब ऐसे शब्द जो चोट पहुंचाते हैं, मन को परेशान करते हैं।
- जब कोई गुस्से या क्रोध में आकर ऐसा बोलता है, तो उसके शब्द हानिकारक होते हैं।

2) "प्रतिजानीहि यत्समाहितः" – इसे समझो और जानो कि

- इसका मतलब है कि जो व्यक्ति शांत, संयमी और गंभीर मन वाला है, उसके द्वारा कही गई बात का भाव अलग होता है।
- वह शब्द भले ही कड़े लगें, लेकिन उनमें कोई द्वेष या अपशब्द नहीं होता।

3) "शब्दस्तु कौन्तेय प्रसादायकः" – प्रसन्नचित्त से बोले गए शब्द

- जो शब्द प्रेम और प्रसन्नता से बोले जाते हैं, वे मन को शांति और खुशी देते हैं।
- ऐसे शब्द लोगों के मन को मोहित करते हैं और घृणा या द्वेष नहीं फैलाते।

4) "स हि मोहितः प्रभो मतः" – जो मोहित होता है वह समझता है

- जो व्यक्ति इन बातों को समझता है, वह क्रोध और गलतफहमी से ऊपर उठ जाता है।
 - वह जानता है कि शब्दों का प्रभाव बोलने वाले के मन की स्थिति पर निर्भर करता है।
-

◆ उदाहरणः

अगर कोई मित्र आपको कठोरता से सलाह देता है:

- यदि वह क्रोध में है, तो उसके शब्द चोट पहुंचा सकते हैं।

- लेकिन यदि वही सलाह प्यार और आपकी भलाई के लिए दी गई है, तो वह आपके लिए उपयोगी और सहायक होगी।
-

◆ श्लोक का संदेश:

- शब्दों के अर्थ और प्रभाव को समझने के लिए बोलने वाले की भावना और मनोदशा को समझना जरूरी है।
 - क्रोध और नफरत से निकले शब्दों को न मानें, वे भ्रमित करते हैं।
 - प्रेम और शांति से निकले शब्द हृदय को छूते हैं और प्रेरणा देते हैं।
-

★ आधुनिक जीवन में महत्व:

- हम अक्सर सोशल मीडिया या बातचीत में ऐसे शब्द सुनते हैं जो कठोर या नकारात्मक लगते हैं।
 - हमें सीखना चाहिए कि हर शब्द को उसी भाव से न लें, जिस भाव से वह बोला गया है।
 - शांत और समझदार बनकर, दूसरों के शब्दों का सही अर्थ समझना जरूरी है।
 - इससे रिश्तों में विश्वास और समझदारी बढ़ती है।
-

◆ इस श्लोक से सीखः

- ✓ शब्दों के पीछे की भावना को समझो।
- ✓ क्रोध में बोले शब्दों को गंभीरता से न लो।
- ✓ प्रेम और शांति से बोले गए शब्दों को अपनाओ।
- ✓ धैर्य और समझदारी से संवाद करो।

श्लोक 2.43

संस्कृत श्लोकः

अप्राप्य मनुष्यणां पदार्थं तु मूर्खसंगम |
दुरात्मनामुपपन्नं वर्गभावमुपाश्रितम् ॥ 43 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

हे अर्जुन! मूर्खों का संग करने से, जो वस्तु मनुष्य को प्राप्त नहीं होती, वह भी दुष्ट मन वालों के साथ मिलकर प्राप्त हो जाती है, परन्तु वह केवल वर्ग-भाव (जात-पात और भेदभाव) पर आधारित होती है।

गहरी व्याख्या:

1) “अप्राप्य मनुष्याणां पदार्थं” – वह वस्तु जो साधारण मनुष्यों को नहीं मिलती

- यहाँ ‘पदार्थ’ का अर्थ है ऐसी चीज़ या वस्तु जो आसानी से नहीं मिलती।
- यह उस प्रकार की उपलब्धि या स्थिति हो सकती है जो साधारण लोग पाना मुश्किल समझते हैं।

2) “तू मूर्खसंगम” – मूर्खों के संग से

- ‘मूर्ख’ का अर्थ है जो अज्ञान और भ्रम में रहते हैं।
- मूर्खों के साथ रहना या उनसे जुड़ना अपशगुन माना गया है।

3) “दुरात्मनामुपपन्नं” – दुष्ट और खराब स्वभाव वालों के साथ

- ‘दुरात्मा’ वे लोग होते हैं जिनका मन खराब, दुष्ट और कुटिल होता है।
- उनके साथ मिलकर व्यक्ति वह वस्तु हासिल करता है जो उसके लिए उचित नहीं होती।

4) “वर्गभावमुपाश्रितम्” – जाति, समूह या वर्ग के आधार पर

- ‘वर्गभाव’ का मतलब है भेदभाव, विशेष रूप से जाति, वर्ग या सामाजिक भेद।
 - ऐसे प्राप्त की गई वस्तु या सफलता जातिवाद या समूहवाद पर आधारित होती है, जो अस्थायी और अनैतिक होती है।
-

◆ श्लोक का संदेश:

- अगर व्यक्ति मूर्ख और दुष्ट लोगों के साथ चलता है, तो वह गलत तरीके से, अनुचित साधनों से भी सफलता या वस्तुएं पा सकता है।
 - लेकिन ऐसी सफलता नैतिक और स्थायी नहीं होती।
 - वास्तविक सफलता वह है जो ज्ञान, सदाचार और न्याय पर आधारित हो।
-

◆ उदाहरण:

- कल्पना करें कोई व्यक्ति केवल चतुराई और छल से ही अपने उद्देश्य प्राप्त करता है, बिना नैतिकता का पालन किए।
 - वह किसी भेदभाव या अनैतिक तरीके से पद या दौलत पाता है, लेकिन वह सफलता स्थायी और सम्मानजनक नहीं होती।
-

★ आधुनिक जीवन में महत्व:

- यह श्लोक हमें चेतावनी देता है कि गलत संगति और गलत रास्तों से सफलता हासिल करना शुद्ध नहीं है।
 - सही मार्ग चुनें और नैतिकता से बढ़ें, भले ही परिणाम धीमे आएं।
 - समाज में जाति, वर्ग या अन्य भेदभावों पर आधारित सफलता सही नहीं होती।
-

◆ इस श्लोक से सीखः

- ✓ गलत संगति से बचें।
- ✓ नैतिकता और धर्म का पालन करें।
- ✓ जाति-धर्म या वर्ग के आधार पर निर्णय न लें।
- ✓ सच्ची और स्थायी सफलता के लिए उचित मार्ग अपनाएं।

श्लोक 2.44

■ संस्कृत श्लोकः

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्व भाषसे ।
गतासूनगतासूनश्व नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ 44 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

हे अर्जुन! तुम उन जीवों के लिए शोक कर रहे हो जिनका शोक करना उचित नहीं है, और फिर भी तुम ज्ञानी जैसा बोल रहे हो। जो ज्ञानी पुरुष होते हैं, वे न जीवितों के लिए शोक करते हैं और न मृतकों के लिए।

○ गहरी व्याख्या:

1) "अशोच्यान्वशोचस्त्वं प्रशावादांशु भाषसे"

- अर्जुन शोक कर रहा है उन लोगों के लिए जिनका शोक करना मूर्खता है।
- फिर भी वह ज्ञान का ढोंग करता है, जैसे कि वह ज्ञानी हो।
- यह बताता है कि केवल शब्दों से ज्ञानी नहीं बन जाते, असली ज्ञान की समझ जरूरी है।

2) "गतासूनगतासून्श्च नानुशोचन्ति पण्डिताः"

- पण्डित या ज्ञानी वे लोग हैं जो जीवित और मृत दोनों के लिए शोक नहीं करते।
- वे जानते हैं कि आत्मा अमर है, न कभी मरती है, न कभी जन्म लेती है।
- इसलिए वे शोक और दुःख से ऊपर रहते हैं।

◆ श्लोक का संदेश:

- असली ज्ञानी वे होते हैं जो आत्मा के अमरत्व को समझते हैं।
- शोक करना जीवन और मृत्यु की प्राकृतिक प्रक्रिया को नकारना है।
- इसलिए ज्ञान के साथ भावुकता और अज्ञानता का त्याग करना चाहिए।

◆ उदाहरण:

- जैसे हम पुराने कपड़ों को फेंक देते हैं क्योंकि वे खराब हो जाते हैं, वैसे ही शरीर भी नष्ट होता है।
- लेकिन आत्मा वही रहती है, नश्वर नहीं होती।
- इसलिए यदि कोई जानता है कि आत्मा अमर है, तो वह शोक नहीं करता।

★ आधुनिक जीवन में महत्व:

- जब हम किसी प्रियजन को खो देते हैं, तो बहुत गहरा दुख होता है।
- लेकिन अगर हम आत्मा के अमरत्व को समझ लें, तो शोक से ऊपर उठकर जीवन को सही दिशा दे सकते हैं।
- यह श्लोक हमें भावनात्मक स्थिरता और मानसिक शांति सिखाता है।

◆ इस श्लोक से सीखः

✓ शोक और दुख के प्रति समझ विकसित करें।

- ✓ आत्मा के अमरत्व को जानकर शांति प्राप्त करें।
- ✓ जीवन और मृत्यु को स्वाभाविक समझें।
- ✓ वास्तविक ज्ञान से अपने कर्तव्य का पालन करें।

श्लोक 2.45

संस्कृत श्लोकः

त्रैगुण्यविषया विद्या मां सूत्रिणा प्रणश्यति ।
गुणेऽस्मिन् सविज्ञाने न तिष्ठति विनिर्मुक्तः ॥ 45 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

हे अर्जुन! तीनों गुणों (सत्त्व, रजस्, तमस्) से संबंधित ज्ञान केवल उन लोगों के लिए है जो शरीर और भौतिक जगत के बंधनों में बंधे रहते हैं। जो इन गुणों से परे हो गया है, वह इस ज्ञान में नहीं ठहरता, क्योंकि वह स्वतंत्र है।

गहरी व्याख्या:

1) “त्रैगुण्यविषया विद्या” – तीन गुणों से जुड़ा ज्ञान

- यहाँ ‘त्रिगुण’ हैं:
 - सत्त्व (शुद्धता, ज्ञान),
 - रजस् (क्रिया, इच्छा),
 - तमस् (अज्ञान, जड़ता)।
- जो ज्ञान इन गुणों से संबंधित है, वह इस भौतिक दुनिया के बारे में होता है।

2) “मां सूत्रिणा प्रणश्यति” – जो मुझे जानने के लिए सूत्रों से आता है

- यह ज्ञान शरीर और मन से जुड़ा है।
- इस ज्ञान से जीव आत्मा को पूर्ण रूप से नहीं समझ पाता।

3) “गुणेऽस्मिन् सविज्ञाने न तिष्ठति विनिर्मुक्तः”

- जो व्यक्ति गुणों के बंधन से मुक्त हो गया है, वह ऐसे ज्ञान में स्थिर नहीं रहता।

- क्योंकि वह आत्मा का साक्षात् अनुभव कर चुका होता है और भौतिक ज्ञान से ऊपर उठ चुका होता है।

◆ श्लोक का संदेश:

- भौतिक और गुणों से बंधा ज्ञान सीमित और अपूर्ण होता है।
- आत्मा का सच्चा ज्ञान गुणों से परे जाकर प्राप्त होता है।
- वास्तविक ज्ञान में बंधन नहीं होता, वह मुक्ति का मार्ग है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- क्या मैं अभी भी भौतिक बंधनों और गुणों के प्रभाव में हूं?
- क्या मेरा ज्ञान केवल बाहरी और भौतिक है, या मैंने आत्मा के सत्य को समझा है?
- क्या मैं अपने अंदर के सच्चे, स्थायी ज्ञान की ओर बढ़ रहा हूं?
- क्या मैं ऐसे ज्ञान और अनुभव की तलाश में हूं जो मुझे मुक्त कर सके?

★ आधुनिक जीवन में महत्व:

- आज के समय में ज्ञान बहुत है, पर अक्सर वह सतही और भौतिक होता है।
- हमें अपने ज्ञान की गहराई पर विचार करना चाहिए कि क्या वह केवल बाहरी है या आंतरिक सत्य को छूता है।
- आध्यात्मिक उन्नति का रास्ता बाहरी ज्ञान से नहीं, बल्कि आत्मा के ज्ञान से होकर जाता है।

श्लोक 2.46

संस्कृत श्लोक:

व्यावसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ 46 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

हे कर्णप्रिय अर्जुन! इस संसार में व्यावसाय (लगन और एकाग्रता) वाली बुद्धि श्रेष्ठ है। क्योंकि कई शाखाएँ हैं ज्ञान की, लेकिन उनमें से अधिकांश का मन अव्यवसाय (असमानित और भटकता) होता है।

🔍 गहरी व्याख्या:

1) "व्यावसायात्मिका बुद्धि" – एकाग्र और स्थिर बुद्धि

- वह बुद्धि जो एक लक्ष्य पर केंद्रित होती है, स्पष्ट होती है, और बिना भटकाव के होती है, वह श्रेष्ठ होती है।
- ऐसा मन और बुद्धि वाला व्यक्ति अपने कर्मों में सफल होता है।

2) "बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्"

- जो बुद्धि कई दिशाओं में विभाजित होती है, यानी जिसका ध्यान बहुत सारे विचारों और भ्रमों में बंटा रहता है, वह अंतहीन और भटकती रहती है।
- ऐसी बुद्धि से मनुष्य सही निर्णय नहीं ले पाता और सफलता नहीं मिलती।

◆ उदाहरण:

- कल्पना करें एक छात्र जो परीक्षा की तैयारी में पूरी तरह एकाग्र है, वह आसानी से अपना लक्ष्य पा लेता है।
- वहीं दूसरा छात्र जो पढ़ाई के साथ-साथ लगातार सोशल मीडिया, दोस्तों की बातों, और अन्य फालतू चीजों में उलझा रहता है, उसकी बुद्धि बिखरी हुई है और वह ठीक से काम नहीं कर पाता।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- क्या मेरा ध्यान अपने लक्ष्य पर केंद्रित है?
- क्या मेरा मन बार-बार भटकता है?
- क्या मैं अपने प्रयासों को एकाग्रता से आगे बढ़ा रहा हूँ?
- क्या मेरी बुद्धि व्यावसायात्मिका है या अस्थिर?

🌟 आधुनिक जीवन में महत्व:

- आज की व्यस्त और जानकारी भरी दुनिया में ध्यान भटकना सामान्य बात है।
- लेकिन सफलता पाने के लिए अपने लक्ष्यों पर ध्यान केंद्रित करना बेहद जरूरी है।
- यह श्लोक हमें सिखाता है कि असफलता का कारण अक्सर हमारी व्याकुल बुद्धि और एकाग्रता की कमी होती है।

श्लोक 2.47

संस्कृत श्लोकः

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ 47 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

हे अर्जुन! तुम्हारा केवल कर्म करने में अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए कर्मों के फल को अपना कारण मत बनाओ और न ही अकर्मण्यता में आसक्त हो।

गहरी व्याख्या:

1) “कर्मण्येवाधिकारस्ते”

- हमारे अधिकार केवल कर्म करने तक सीमित हैं।
- हम परिणाम को नियंत्रित नहीं कर सकते, क्योंकि परिणाम अनेक बाहरी कारणों पर निर्भर होता है।

2) “मा फलेषु कदाचन”

- कभी भी कर्म के फलों की चिंता या आसक्ति मत रखो।
- फल की चिंता से मन अस्थिर होता है और कर्म में बाधा आती है।

3) “मा कर्मफलहेतुर्भूः”

- कर्म करने का कारण फल नहीं होना चाहिए।
- अगर कर्म का लक्ष्य केवल फल होता है, तो मन में संदेह और चिंता आती है।

4) “मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि”

- न तो कर्म में आसक्ति हो, न अकर्मण्यता (कुछ न करना) में।
- कर्म करना जरूरी है, लेकिन फल की चिंता छोड़ी जानी चाहिए।

◆ उदाहरणः

- एक किसान अपनी पूरी मेहनत से खेत जोतता है और बीज बोता है, लेकिन बारिश, मौसम, या अन्य प्राकृतिक कारणों को नियंत्रित नहीं कर सकता।

- किसान का कर्तव्य है मेहनत करना, फल की चिंता नहीं।
- उसी तरह हमें अपने काम में पूरी लगन लगानी चाहिए, लेकिन परिणाम की चिंता छोड़ देनी चाहिए।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- क्या मैं अपने कर्मों को सही तरीके से करता हूँ या सिर्फ फल की चिंता करता हूँ?
- क्या मैं अपने प्रयासों में पूरी निष्ठा और समर्पण से लगा हूँ?
- क्या मैं फल की चिंता से अपने मन को अशांत करता हूँ?
- क्या मैं अकर्मण्यता की तरफ भाग रहा हूँ या कर्म करते हुए फल की आशा छोड़ पाया हूँ?

★ आधुनिक जीवन में महत्व:

- जीवन में हम अक्सर नतीजों को लेकर तनावग्रस्त रहते हैं।
- इस श्लोक से हमें सीख मिलती है कि कर्म करते रहो, लेकिन फल की चिंता मत करो।
- इससे मानसिक शांति मिलती है और हम बेहतर परिणाम दे पाते हैं।

श्लोक 2.48

संस्कृत श्लोक:

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय |
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ 48 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

हे धनञ्जय (अर्जुन)! तू योग की स्थिति में रहकर कर्म कर, और कर्म के फल से अपनी आसक्ति त्याग दे। सफलता और असफलता में समान भाव रख, यही योग का नाम है।

गहरी व्याख्या:

1) “योगस्थः कुरु कर्माणि”

- अपने मन और बुद्धि को योग की स्थिति में स्थिर रखकर कर्म करते रहो।

- योग से अभिप्राय है मन की एकाग्रता और संतुलन।

2) "सङ्गं त्यक्त्वा"

- कर्मों के फल की आसक्ति (लगाव) छोड़ दो।
- फल की इच्छा या भय से मुक्त हो जाओ।

3) "सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा"

- सफलता या असफलता दोनों को समान समझो।
- न तो खुशी में अधिक उत्साहित हो और न ही असफलता में निराश।

4) "समत्वं योग उच्यते"

- इस समान मन की स्थिति को योग कहा जाता है।
- योग का अर्थ केवल ध्यान नहीं, बल्कि मन की स्थिरता और संतुलन भी है।

◆ उदाहरण:

- एक खिलाड़ी जो अपनी पूरी मेहनत से खेलता है, लेकिन जीत या हार को समान भाव से स्वीकार करता है।
- वह हार के कारण उदास नहीं होता और जीत के कारण घमंड नहीं करता।
- इस मानसिकता से वह बेहतर खेलता है और मानसिक रूप से मजबूत रहता है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- क्या मैं अपने काम में पूरी लगन से लगा हूँ?
- क्या मैं कर्म के फल को लेकर आसक्त हूँ या उसे त्याग पाया हूँ?
- क्या मैं सफलता और असफलता में समान भाव रख सकता हूँ?
- क्या मेरा मन योग की स्थिति में स्थिर है?

★ आधुनिक जीवन में महत्व:

- परिणाम के उतार-चढ़ाव से परेशान होने के बजाय, हमें अपने कर्म पर ध्यान देना चाहिए।
- मानसिक संतुलन और स्थिरता से जीवन के हर क्षेत्र में सफलता मिलती है।
- यह श्लोक तनावमुक्त जीवन और स्थिर मन का सूत्र बताता है।

श्लोक 2.49

■ संस्कृत श्लोकः

दृष्ट्वा तु तव कर्मणि सङ्गं स्व-कर्मणि तथा ।
असक्तोऽसि मया तत्त्वं संगं त्यक्त्वा फलानि च ॥
यच्छ्रेयः स एतस्य तत्त्वं संगं त्यक्त्वा मत्वा हितम् ॥ 49 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

हे अर्जुन! मैं देख रहा हूँ कि तुम अपने कर्म में आसक्त हो और कर्म से लगाव रखते हो। परन्तु मैं तुम्हें वह ज्ञान बताता हूँ जो मैंने स्वयं अनुभव किया है — कर्म के प्रति आसक्ति त्यागकर उसके फल से भी दूर रहो। जो कर्म करने में श्रेष्ठ होता है, वह वही है जो आसक्ति त्याग कर हितकारी हो।

🔍 गहरी व्याख्या:

1) "दृष्ट्वा तु तव कर्मणि सङ्गं स्व-कर्मणि तथा"

- श्रीकृष्ण अर्जुन के मन की स्थिति को देखते हैं कि वह अपने कर्मों में और उनके फलों में गहरे लगाव (संग) में है।
- अर्जुन का मन इस लगाव में उलझा हुआ है, जो उसे मानसिक अशांति में डाल रहा है।

2) "असक्तोऽसि मया तत्त्वं संगं त्यक्त्वा फलानि च"

- कृष्ण कहते हैं कि वे जो ज्ञान दे रहे हैं, वह अनुभव से प्राप्त गहरा सत्य है।
- इस सत्य के अनुसार, हमें कर्म करते समय न तो कर्म में आसक्ति रखनी चाहिए, न ही उसके फलों की अपेक्षा करनी चाहिए।
- यानी कर्म करो लेकिन न उससे जुड़ी आसक्ति से और न ही फल की लालसा से बंधो।

3) "यच्छ्रेयः स एतस्य तत्त्वं संगं त्यक्त्वा मत्वा हितम्"

- जो कर्म इस प्रकार आसक्ति त्यागकर किया जाए, वही श्रेष्ठ (श्रेयस्कर) माना जाता है।
- वह कर्म मन और जीवन के लिए हितकारी होता है, क्योंकि इससे मानसिक शांति और स्थिरता आती है।

◆ अर्थ और संकेतः

- अर्जुन के मन की हालत ऐसी थी कि वह युद्ध को लेकर उलझन में था, उसका मन अपने कर्म और उसके फलों में बंधा था।
- कृष्ण उसे समझाते हैं कि कर्म में आसक्ति और फल की लालसा को त्यागना ही सच्ची योग्यता है।
- कर्म करना हमारा दायित्व है, लेकिन फल की चिंता हमारे मन को बेचैन करती है।
- इसलिए, श्रेष्ठ कर्म वह है जो बिना आसक्ति और फल की इच्छा के किया जाए।

◆ उदाहरणः

- एक विद्यार्थी सोचिए जो अपनी पढ़ाई में पूरी मेहनत करता है लेकिन परीक्षा के परिणाम के लिए तनाव नहीं करता।
- वह जानता है कि उसने पूरी तैयारी की है और परिणाम जो भी आए, वह स्वीकार करेगा।
- उसकी लगन और कर्म पर भरोसा होता है, फल की चिंता छोड़ दी होती है।
- ऐसा विद्यार्थी मानसिक रूप से शांत और सफल होता है।
- इसके विपरीत, जो विद्यार्थी हमेशा फल की चिंता करता है, वह तनावग्रस्त रहता है और पढ़ाई में भी मन नहीं लगा पाता।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- क्या मैं अपने कर्म में पूरी लगन लगाता हूँ या डर, चिंता और फल की लालसा मुझे विचलित करती है?
- क्या मैं अपने कर्म के फल को लेकर अधिक सोचता हूँ या केवल कर्म पर ध्यान देता हूँ?
- क्या मैं कर्म करते हुए मानसिक शांति बनाए रख पाता हूँ?
- क्या मेरा कर्म मेरा दायित्व है, या मैं उसे अपने हित के लिए करता हूँ?

★ आधुनिक जीवन में महत्वः

- आज के समय में तनाव और चिंता सबसे बड़ी मानसिक बीमारियाँ हैं।
- यह श्लोक हमें सिखाता है कि हमें अपने कर्मों को एक जिम्मेदारी समझकर पूरी लगन से करना चाहिए, लेकिन फल की चिंता छोड़ देनी चाहिए।
- इससे मानसिक शांति मिलती है और जीवन में सफलता सहज हो जाती है।
- यह योग का सार भी है — कर्मयोग।

श्लोक 2.50

■ संस्कृत श्लोकः

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ 50 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

जो व्यक्ति बुद्धि से युक्त होता है वह इस जन्म में दोनों प्रकार के कर्मों — अच्छे और बुरे — को त्याग देता है। इसलिए, हे अर्जुन! तुम योग में लीन होकर कर्मों में कुशलता से लगा रहो। योग ही कर्मों में श्रेष्ठ कुशलता है।

🔍 गहरी व्याख्या:

1) “बुद्धियुक्तः”

- बुद्धि यानी विवेक और समझ से परिपूर्ण व्यक्ति।
- जो अपने कर्मों और परिणामों को समझदारी से देखता है।

2) “जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते”

- इस संसार में वह व्यक्ति अच्छे कर्मों (सुकृत) और बुरे कर्मों (दुष्कृत) दोनों से छुटकारा पा लेता है।
- इसका मतलब है कि वह कर्मों की तुलना में अपने कर्मों के फलों से ऊपर उठ जाता है।

3) “तस्मात् योगाय युज्यस्व”

- इसलिए, तुम्हें योग के मार्ग पर चलना चाहिए।
- योग का मतलब है कर्मयोग — कर्म में पूरी लगन, लेकिन फल की आसक्ति का त्याग।

4) “योगः कर्मसु कौशलम्”

- योग ही कर्मों में वास्तविक कुशलता (कौशल) है।
- जब हम बिना आसक्ति, बिना फल की चिंता के कर्म करते हैं, तभी हमारा कर्म सफल और फलदायी होता है।

◆ अर्थ और संकेतः

- यह श्लोक बताता है कि कर्म करते हुए अगर व्यक्ति बुद्धिमान हो और योग की स्थिति में हो तो वह अच्छे-बुरे दोनों कर्मों के बंधन से मुक्त हो जाता है।
 - कर्म योग में कुशलता का अर्थ है अपने मन को नियंत्रण में रखना, फल की चिंता न करना और निरंतर कर्म करते रहना।
 - इसी में जीवन का सार और शांति है।
-

◆ उदाहरणः

- मान लीजिए कोई कर्मचारी अपनी नौकरी पूरी ईमानदारी और मेहनत से करता है, चाहे उसे प्रमोशन मिले या ना मिले।
 - वह न तो सफलता में घमंड करता है, न ही असफलता में निराश होता है।
 - इस संतुलन और योग की स्थिति में वह कर्मशील और मानसिक रूप से मजबूत रहता है।
 - इसी प्रकार वह कर्म में कुशल कहलाता है।
-

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- क्या मैं अपने कर्मों के प्रति बुद्धिमान और संतुलित हूँ?
 - क्या मैं फल की चिंता छोड़कर कर्म करने में सक्षम हूँ?
 - क्या मैं अपने कर्मों में कुशलता (योग) विकसित कर रहा हूँ?
 - क्या मैं कर्मों के अच्छे-बुरे प्रभाव से ऊपर उठ पाया हूँ?
-

★ आधुनिक जीवन में महत्वः

- इस श्लोक से हमें प्रेरणा मिलती है कि कर्म करते समय मन को स्थिर रखना चाहिए।
- तनाव, चिंता और भय को छोड़कर कर्म में दक्ष बनना चाहिए।
- यही मानसिक और व्यावहारिक कुशलता है जो सफलता की कुंजी है।

श्लोक 2.51

संस्कृत श्लोकः

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।

◆ हिंदी अनुवादः

बुद्धियुक्त (विवेकी) मनुष्य, जो कर्मों के फलों को त्याग देता है, वह जन्म के बंधनों से मुक्त होकर उस परम शांति के स्थान को प्राप्त करता है जो कभी दुख से ग्रस्त नहीं होता।

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 १) "कर्मजं फलम् त्यक्त्वा"

- यह भाग बताता है कि बुद्धिमान व्यक्ति अपने कर्मों के फल की आसक्ति को त्याग देता है।
- वह जानता है कि फल उसके नियंत्रण में नहीं है — केवल कर्म उसके हाथ में है।
- इसलिए वह फल की चिंता छोड़कर केवल श्रेष्ठ कर्म करता है।

👉 २) "बुद्धियुक्ता मनीषिणः"

- "बुद्धियुक्त" का अर्थ है कि जो योगबुद्धि से युक्त है यानी जिसके पास संतुलित दृष्टिकोण, आत्मज्ञान और विवेक है।
- "मनीषिणः" का अर्थ है ज्ञानी, विवेकी और आत्मा को जानने वाले।
- ऐसे व्यक्ति ही इस गीता ज्ञान का सही अर्थ समझ पाते हैं।

👉 ३) "जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः"

- जो लोग फल की आसक्ति को छोड़ते हैं, वे धीरे-धीरे कर्म के बंधन, पुनर्जन्म और संसार के चक्र से मुक्त हो जाते हैं।
- उनके लिए फिर नया जन्म लेना आवश्यक नहीं होता, क्योंकि उन्होंने संसार की माया और आसक्ति को पीछे छोड़ दिया होता है।

👉 ४) "पदं गच्छन्ति अनामयम्"

- ऐसे मुक्त आत्मा वाले लोग 'अनामय पद' यानी वह स्थान प्राप्त करते हैं जहां कोई रोग, दुख, क्लेश या जन्म-मृत्यु का भय नहीं होता।
- इसे मोक्ष, परमधाम, या ब्रह्म स्थिति भी कहा जाता है — यह ईश्वर के साथ एकत्र की अवस्था है।

◆ उदाहरण से समझें:

मान लीजिए एक समाजसेवी दिन-रात लोगों की सेवा करता है, लेकिन उसे इस बात का कोई मोह नहीं कि उसे इसका बदला मिलेगा या प्रशंसा मिलेगी।

- वह कर्म करता है सेवा के लिए, न कि अपनी छवि चमकाने या फल पाने के लिए।
- ऐसे व्यक्ति धीरे-धीरे अपने 'अहं' और 'फल की इच्छा' से मुक्त हो जाते हैं।
- उनके कर्म शुद्ध हो जाते हैं, और वे आत्मिक शांति प्राप्त करते हैं।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- क्या मैं अपने जीवन में फल की चिंता छोड़कर निष्काम कर्म कर पा रहा हूँ?
- क्या मेरा उद्देश्य केवल कार्य करना है या मैं हमेशा इसके बदले कुछ चाहता हूँ?
- क्या मैं अपनी आत्मा की शांति को भौतिक सफलता से ऊपर रखता हूँ?
- क्या मैं कर्म करते समय भगवान की याद या आत्मा की शुद्धता बनाए रखता हूँ?

★ आधुनिक जीवन में महत्व:

- आज हम काम करते हैं नाम, पैसा या प्रशंसा के लिए।
- लेकिन यह श्लोक सिखाता है कि यदि हम कर्म को एक सेवा और जिम्मेदारी मानकर करें, और उसके फल को ईश्वर पर छोड़ दें —
तो हमारा जीवन तनाव से मुक्त हो सकता है।
- इससे व्यक्ति मानसिक शांति, आत्मबल और अंततः आध्यात्मिक मुक्ति की ओर बढ़ता है।

श्लोक 2.52

■ संस्कृत श्लोक:

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिव्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ 52 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

जब तेरी बुद्धि मोह के दलदल को पार कर जाएगी, तब तू सुनी-सुनाई और सुनने योग्य बातों के प्रति निर्लिप्त (उदासीन) हो जाएगा।

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) "मोहकलिलं" – मोह का दलदल

- 'मोह' का अर्थ है भ्रम, अज्ञानता, और ममता।
 - 'कलिलम्' का अर्थ है दलदल या कीचड़।
 - जब इंसान मोह में फंसा होता है, तब वह सत्य और कर्तव्य में अंतर नहीं कर पाता।
💡 अर्जुन इस समय इसी मोह में थे — रिश्ते, कुल, धर्म, और करुणा के नाम पर वे अपने कर्तव्य से पीछे हट रहे थे।
-

👉 2) "बुद्धिव्यतिरिष्यति" – जब तेरी बुद्धि पार कर जाएगी

- जब इंसान आत्मज्ञान के माध्यम से अपनी बुद्धि को स्थिर और स्पष्ट बना लेता है,
 - तब वह इस मोह के कीचड़ को पार कर जाता है, और भ्रम से बाहर आ जाता है।
-

👉 3) "गन्तासि निर्वेदं" – तब तू उदासीन हो जाएगा

- 'निर्वेद' का मतलब है वैराग्य या तटस्थिता।
 - इसका मतलब है, जब व्यक्ति मोह से मुक्त हो जाता है,
तो उसे फिर ना बाहरी ज्ञान की प्यास रहती है, ना ही सुन-सुनकर भ्रम होता है।
-

👉 4) "श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च"

- इसका मतलब है — जो बाते सुनी हैं (श्रुतस्य) और जो आगे सुनने योग्य हैं (श्रोतव्यस्य)।
 - जब व्यक्ति आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है, तो उसे फिर ग्रंथों, भाषणों, तकर्णों में भटकने की ज़रूरत नहीं रहती।
 - वह स्वयं सत्य को अनुभव कर लेता है।
-

◆ उदाहरण से समझें:

कल्पना कीजिए कि एक विद्यार्थी जो जीवन के उद्देश्य को नहीं समझता,
हर रोज़ अलग-अलग किताबें, लोगों की राय, मोटिवेशनल वीडियो देखता है —

उसकी बुद्धि भ्रमित रहती है।

लेकिन जैसे ही उसे अपने जीवन का सच्चा उद्देश्य और आत्मज्ञान मिल जाता है,
तो उसे फिर बाहरी ज्ञान की भूख नहीं रहती — क्योंकि उसे अब भीतर से स्पष्टता मिल चुकी होती है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- क्या मैं अभी मोह के दलदल में फंसा हूँ — रिश्तों, इच्छाओं या भय में?
 - क्या मेरी बुद्धि इतनी शुद्ध और स्थिर है कि मैं सत्य को स्पष्ट रूप से देख पा रहा हूँ?
 - क्या मैं दूसरों की बातों से भटकता हूँ या मुझे आत्म-विश्वास है कि मैं क्या कर रहा हूँ?
 - क्या मैंने ज्ञान को केवल सुना है, या उसे अनुभव भी किया है?
-

★ आधुनिक जीवन में महत्व:

- आज हम हर जगह से ज्ञान और राय इकट्ठा करते रहते हैं — सोशल मीडिया, किताबें, यूट्यूब।
- लेकिन जब तक हमारी बुद्धि मोह में फंसी है, तब तक हम भ्रम में ही रहते हैं।
- जब आत्मज्ञान आता है, तो व्यक्ति भीतर से संतुलित और शांत हो जाता है।

श्लोक 2.53

संस्कृत श्लोक:

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्यसि ॥ 53 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

जब तुम्हारी बुद्धि श्रुति (वेदों आदि) की परस्पर विरोधी बातों से विचलित नहीं होगी और वह समाधि (ध्यान) में अविचल और स्थिर हो जाएगी,
तब तुम योग (आत्मा से एकता) को प्राप्त कर लोगे।

❑ गहरी व्याख्या:

👉 1) "श्रुतिविप्रतिपन्ना" – विरोधी बातें

- 'श्रुति' का अर्थ है शास्त्रों, वेदों या दूसरों से सुनी बातें।
 - कभी-कभी विभिन्न शास्त्रों में विरोधाभासी विचार होते हैं — जैसे एक जगह संन्यास की महिमा, दूसरी जगह गृहस्थ जीवन की।
 - ऐसी बातें हमारी बुद्धि को भ्रमित कर सकती हैं।
- 💡 अर्जुन की भी यही स्थिति थी — वह भी धर्म, करुणा और युद्ध के कर्तव्य में उलझे हुए थे।
-

👉 2) "ते निश्चला स्थास्यति" – जब बुद्धि स्थिर हो जाएगी

- श्रीकृष्ण कहते हैं कि जब तुम्हारी बुद्धि इन विरोधाभासों से विचलित नहीं होगी, और वह एक सत्य पर अड़िग हो जाएगी,
 - तभी तुम सही मार्ग पर होगे।
-

👉 3) "समाधाव अचला बुद्धिः" – ध्यान में स्थिर बुद्धि

- 'समाधि' का अर्थ है पूर्ण एकाग्रता या चेतना की वह अवस्था जहां आत्मा और परमात्मा में एकत्र होता है।
 - 'अचला' मतलब अचल, हिलती नहीं।
 - जब हमारी बुद्धि पूर्णतः ईश्वर, आत्मा और कर्तव्य के ज्ञान में टिक जाती है, तब हम मोह, भ्रम और द्वंद्व से मुक्त हो जाते हैं।
-

👉 4) "तदा योगमवाप्यसि" – तब तुम योग को प्राप्त कर लोगे

- 'योग' का अर्थ यहाँ ईश्वर से जुड़ने की अवस्था है।
 - यह केवल आसनों का अभ्यास नहीं, बल्कि बुद्धि और आत्मा की स्थिरता का फल है।
 - जब हम भीतर से स्थिर और निर्विकारी हो जाते हैं, तभी सच्चा योग प्रकट होता है।
-

◆ उदाहरण से समझें:

मान लीजिए आप एक चौराहे पर खड़े हैं और चारों ओर से लोग अलग-अलग राय दे रहे हैं — कोई कहता है नौकरी करो, कोई कहता है बिज़नेस, कोई कहता है संन्यास, कोई कुछ और। जब तक आपकी बुद्धि बाहरी रायों पर डोलती रहती है, आप निश्चय नहीं कर पाते।

लेकिन जब आप भीतर से स्पष्ट हो जाते हैं — कि मुझे आत्मा की आवाज़ सुनकर चलना है — तब आप शांति, एकता और स्थिरता को प्राप्त करते हैं।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- क्या मेरी बुद्धि बाहरी विचारों से भ्रमित है या मैं भीतर से स्पष्ट हूँ?
 - क्या मैंने अपने जीवन के उद्देश्य को भीतर से समझा है, या केवल दूसरों से सुनी बातों पर निर्भर हूँ?
 - क्या मेरा मन समाधि यानी एकाग्रता की स्थिति में जाता है?
 - क्या मैं योग को केवल अभ्यास मानता हूँ या आत्मा और परमात्मा के मिलन की स्थिति?
-

★ आधुनिक जीवन में महत्व:

- आज के समय में **अत्यधिक सूचना (information overload)** से हम भ्रमित रहते हैं।
- हर जगह से अलग-अलग राय, आदर्श, रास्ते मिलते हैं — और मन डोलता रहता है।
- यह श्लोक सिखाता है कि जब बुद्धि भीतर से स्थिर और शांत हो जाती है, तभी हम सच्चे योग को प्राप्त कर सकते हैं।

श्लोक 2.54

संस्कृत श्लोक:

अर्जुन उवाच ।
स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ 54 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

अर्जुन ने कहा:

हे केशव! उस पुरुष की क्या पहचान है जिसकी बुद्धि स्थिर हो गई है (स्थितप्रज्ञ)?

वह समाधिस्थ व्यक्ति कैसे बोलता है, कैसे बैठता है, और कैसे चलता है?

गहरी व्याख्या:

👉 1) "स्थितप्रज्ञस्य का भाषा" – स्थिर बुद्धि वाले की पहचान क्या है?

- 'स्थितप्रज्ञ' वह व्यक्ति है जिसकी बुद्धि पूरी तरह आत्मा में स्थित हो चुकी है।
- वह राग-द्वेष, मोह, लालच, भय, अहंकार से मुक्त होता है।
- अर्जुन यह जानना चाहते हैं कि ऐसा व्यक्ति दिखता कैसा है?, उसकी बोलने की शैली कैसी होती है?

👉 2) "समाधिस्थस्य" – जो समाधि में स्थित है

- समाधि का अर्थ यहाँ है — अंतर की शांति में डूबा हुआ व्यक्ति,
जो भीतर से एकदम शांत, निर्विकारी और आत्म-स्थित है।

👉 3) "किं प्रभाषेत?" – वह बोलता कैसे है?

- अर्जुन यह नहीं पूछ रहे कि वह कौन सी भाषा में बोलता है।
- उनका आशय यह है कि ऐसा व्यक्ति किस प्रकार के विचार व्यक्त करता है?
क्या वह आक्रोश, मोह या लालच की बातें करता है, या शांति और सत्य की?

👉 4) "किमासीत?" – वह बैठता कैसे है?

- इसका मतलब है कि उसका व्यवहार, उसकी उपस्थिति कैसी होती है।
- क्या वह चंचल होता है या शांत? क्या वह बाहर से दिखने में साधारण होता है या विशेष?

👉 5) "व्रजेत किम्?" – वह चलता कैसे है?

- इसका अर्थ है:
वह जीवन के रास्ते पर कैसे चलता है?
उसके कर्म कैसे होते हैं — क्या वह मोह से प्रेरित होता है या ज्ञान से?

◆ आधुनिक उदाहरण से समझें:

मान लीजिए कोई व्यक्ति ध्यान और साधना करता है।

अब आप यह जानना चाहते हैं कि —

| क्या वह वाकई भीतर से शांत है, या केवल दिखावे के लिए ध्यान करता है?

अर्जुन भी ऐसा ही पूछते हैं —

"हे कृष्ण, उस आत्म-स्थित व्यक्ति की असली पहचान क्या है?"

वह कैसे व्यवहार करता है जिससे हम जान सकें कि वह वाकई स्थितप्रज्ञ है?

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- क्या मेरी बुद्धि स्थिर है या मैं हर भावना से बहक जाता हूँ?
- क्या मेरे शब्दों में संयम और करुणा है या मैं क्रोध, मोह और वाणी की अशुद्धि से बोलता हूँ?
- क्या मेरा जीवन, मेरी चाल-ढाल, मेरी गतिविधियाँ आत्म-संयम और विवेक से भरी हैं?

★ इस श्लोक का आधुनिक महत्व:

- आज लोग बाहरी आचरण से दूसरों को समझते हैं — कपड़े, बोलचाल, स्टाइल आदि से।
- लेकिन श्रीकृष्ण हमें सिखाते हैं कि वास्तविक योगी या ज्ञानी की पहचान उसके शांत, संयमित और मोह-रहित व्यवहार से होती है।
- यह श्लोक एक सच्चे योगी या साधक की पहचान खोजने की शुरुआत है।

श्लोक 2.55

■ संस्कृत श्लोक:

श्रीभगवानुवाच ।
प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ 55 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

श्रीभगवान ने कहा:

हे पार्थ! जब मनुष्य मन के सभी इच्छाओं का पूर्णतः त्याग कर देता है,
और अपने ही आत्मा में संतुष्ट रहता है,

तभी उसे स्थितप्रज्ञ (बुद्धि में स्थिर) कहा जाता है।

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) "प्रजहाति यदा कामान्" – जब इच्छाओं का त्याग होता है

- 'काम' का मतलब सिर्फ़ वासना नहीं, बल्कि मन की हर वो इच्छा है जो हमें बाहरी वस्तुओं की ओर खींचती है
—
धन, पद, नाम, स्वाद, शक्ति, प्रशंसा आदि।
 - स्थितप्रज्ञ वह होता है जो इन सारी इच्छाओं को त्याग चुका होता है।
 - लेकिन यहाँ "दबाना" नहीं कहा गया — "प्रजहाति" का अर्थ है,
स्वेच्छा से त्याग देना, क्योंकि अब इनकी ज़रूरत ही नहीं रही।
-

👉 2) "मनोगतान्" – मन में उत्पन्न होने वाली इच्छाएं

- ये इच्छाएं अंदर ही अंदर हमारे मन में बार-बार उठती हैं।
 - कभी हम सोचते हैं — "काश मुझे ये मिल जाए", "मुझे वो नहीं मिला", आदि।
 - श्रीकृष्ण कहते हैं, जब इंसान ऐसा सोचना ही छोड़ दे,
तब वह एक अंदर से पूर्ण और शांत स्थिति में पहुंचता है।
-

👉 3) "आत्मन्येव आत्मना तुष्टः" – आत्मा में ही संतुष्ट व्यक्ति

- यह सबसे गहरा भाग है:
स्थितप्रज्ञ व्यक्ति बाहरी चीजों से नहीं, बल्कि अपने आत्म-स्वरूप से ही संतुष्ट रहता है।
 - उसे न प्रशंसा चाहिए, न पद, न वस्तुएं —
वह जानता है कि उसकी सच्ची खुशी भीतर है,
और वही उसे स्थिर बनाती है।
-

👉 4) "स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते" – तभी वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है

- जब ये तीन बातें पूरी तरह हो जाती हैं:
 1. सभी इच्छाओं का त्याग

2. मन की चंचलता का अंत

3. आत्मा में संतुष्टि

तब उस व्यक्ति को "स्थितप्रज्ञ" - स्थिरबुद्धि ज्ञानी कहा जाता है।

◆ आधुनिक उदाहरण से समझें:

मान लीजिए एक व्यक्ति का सपना था कि उसे बड़ी गाड़ी चाहिए, विदेश जाना है, पैसा कमाना है।

लेकिन जैसे-जैसे वह आत्मा और सच्चे ज्ञान को समझता है,

उसे यह एहसास होता है कि असली शांति न गाड़ी में है, न शोहरत में —

बल्कि भीतर की स्थिरता, संतोष और चेतना में है।

अब वो व्यक्ति भीड़ में रहकर भी अकेले शांत रहता है।

उसे अब कुछ और पाने की चाह नहीं रही — वो बस है, और संतुष्ट है।

वही स्थितप्रज्ञ है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

✓ क्या मैं बाहरी चीजों से ही सुख चाहता हूँ?

✓ क्या मेरी शांति इस बात पर निर्भर करती है कि मुझे क्या मिला या नहीं मिला?

✓ क्या मैं आत्मा में स्थित होकर जी रहा हूँ या इच्छाओं में उलझा हूँ?

★ इस श्लोक से सीख़:

- सच्चा योग तब शुरू होता है जब हमारी बुद्धि भीतर के आत्म-ज्ञान में स्थिर हो जाए।
- बाहरी चीजों को छोड़ना नहीं, बल्कि उनकी आवश्यकता का अंत हो जाना ही असली त्याग है।
- जो आत्मा में ही संतुष्ट है, वही सच्चा ज्ञानी और स्थितप्रज्ञ है।

श्लोक 2.56

संस्कृत श्लोकः:

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ 56 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

जो व्यक्ति दुःखों में विचलित नहीं होता, सुख की इच्छा नहीं करता,
राग, भय और क्रोध से रहित होता है — वही स्थिर बुद्धि वाला मुनि कहलाता है।

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) “दुःखेषु अनुद्धिग्नमनाः” – दुःख में विचलित न होना

- जीवन में कोई न कोई दुःख तो आता ही है — जैसे कि किसी की मृत्यु, अपमान, विफलता, बीमारी आदि।
- आम व्यक्ति दुःख में टूट जाता है, क्रोधित हो जाता है या भागने लगता है।
- लेकिन स्थितप्रज्ञ व्यक्ति भीतर से शांत रहता है।

वह जानता है कि ये दुःख क्षणिक हैं और आत्मा पर कोई असर नहीं डाल सकते।

◆ उदाहरणः

कोई आपका अपमान कर दे, तो एक सामान्य व्यक्ति दुखी होकर जवाब देता है या टूट जाता है।

लेकिन स्थितप्रज्ञ व्यक्ति सोचता है — “यह सिर्फ शब्द हैं। मेरा आत्मा इससे नहीं बदलती।”

वह मौन और शांत रहता है।

👉 2) “सुखेषु विगतस्पृहः” – सुख की लालसा नहीं करता

- सुख में लोग अक्सर आसक्त हो जाते हैं, जैसे — स्वादिष्ट भोजन, प्रशंसा, धन, सुविधाएं।
 - स्थितप्रज्ञ व्यक्ति इनसे मोह नहीं करता,
- क्योंकि वह जानता है कि ये चीजें भी अस्थायी हैं।

◆ उदाहरणः

उसे मिठाई मिले तो वह धन्यवाद कहेगा, पर अगर न मिले तो भी बेचैन नहीं होगा।

उसकी खुशी किसी चीज़ पर निर्भर नहीं करती।

👉 3) "वीतरागभयक्रोधः" – राग, भय और क्रोध से मुक्त

- राग = किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति अत्यधिक मोह।
- भय = उसका खो जाने का डर।
- क्रोध = जब कुछ हमारी इच्छा के अनुसार न हो।

ये तीनों चित्त को अस्थिर कर देते हैं —

लेकिन जिसकी बुद्धि स्थिर है, वह इन तीनों से ऊपर उठ चुका होता है।

👉 4) "स्थितधीमुनिः उच्यते" – वही मुनि कहलाता है

- मुनि = जो मनन करे, विवेक से जिए।
- स्थितधी = जिसकी बुद्धि स्थिर हो।
- ऐसा व्यक्ति ना भावनाओं में बहता है, ना भागता है, बस सत्य में स्थित रहता है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मैं दुःख में टूट जाता हूँ?
- ✓ क्या सुख के लिए मैं बेचैन रहता हूँ?
- ✓ क्या मेरे जीवन में राग (मोह), भय और क्रोध हावी हैं?
- ✓ क्या मेरी शांति परिस्थितियों पर निर्भर करती है?

⭐ इस श्लोक से जीवन की सीख:

- ✓ भावनाओं को दबाना नहीं, उन्हें समझना और ऊपर उठना ही योग है।
- ✓ सच्चा संत वही है जो सुख-दुख में समान भाव रखता है।
- ✓ जब हम मोह, भय और क्रोध से मुक्त हो जाते हैं, तभी हमें सच्ची शांति मिलती है।

श्लोक 2.57

संस्कृत श्लोक:

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥

◆ हिंदी अनुवादः

जो व्यक्ति सभी वस्तुओं के प्रति आसक्ति से रहित रहता है,
और शुभ या अशुभ (अच्छे-बुरे) को प्राप्त होने पर न प्रसन्न होता है, न धृणा करता है —
उसकी बुद्धि स्थिर मानी जाती है।

❑ गहरी व्याख्या:

👉 1) "सर्वत्र अनभिस्नेहः" – हर जगह आसक्ति से रहित

- 'अनभिस्नेह' का मतलब है — किसी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति से मोह न रखना।
- स्थितप्रज्ञ व्यक्ति किसी से चिपका नहीं होता, चाहे वह वस्तु हो, व्यक्ति हो या विचार हो।
- वह समझता है कि सब क्षणिक और परिवर्तनशील है — इसलिए उनसे जुड़ाव उसे नहीं बांधता।

◆ उदाहरणः

अगर उसके पास अच्छा भोजन है, वह खा लेता है।

अगर नहीं है, तो भी वह दुखी नहीं होता।

क्योंकि उसका मन खाने से नहीं, आत्मा से संतुष्ट है।

👉 2) "शुभाशुभं तत्तत्राप्य" – अच्छा-बुरा जो भी मिले

- जीवन में कभी शुभ (अच्छे अनुभव) आते हैं — जैसे सफलता, सम्मान, पुरस्कार।
- कभी अशुभ (कठिन अनुभव) — जैसे विफलता, अपमान, हानि।
- स्थितप्रज्ञ व्यक्ति इन दोनों को समान भाव से स्वीकार करता है।

◆ जैसे — कोई नौकरी छिन जाए, वह दुखी नहीं होता।

और यदि अचानक तरक्की हो जाए, तो वह उछलता नहीं।

| क्योंकि वह जानता है: यह भी बीत जाएगा।

👉 3) “न अभिनन्दति, न द्वेष्टि” – न आकर्षित होता है, न घृणा करता है

- 'अभिनन्दति' = हर्ष से झूम जाना।
- 'द्वेष्टि' = नापसंद या नफरत करना।
- जो व्यक्ति इन दोनों से मुक्त है, वही संतुलित है।

| उसका मन कहता है — “जो है, जैसा है, ठीक है।”

| वह न इच्छा करता है, न विरोध। बस स्वीकार करता है।

👉 4) “तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता” – उसकी बुद्धि स्थिर मानी जाती है

- इसका अर्थ है – उसकी चेतना, उसकी समझ, उसके निर्णय भीतर से संचालित होते हैं, न कि परिस्थितियों और परिणामों से।
- वह जीवन की लहरों में ऊपर-नीचे नहीं डोलता, बल्कि गहरे स्थिर रहता है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मैं शुभ (सफलता, सराहना) में उड़ने लगता हूँ?
- ✓ क्या मैं अशुभ (विफलता, आलोचना) में गिर जाता हूँ?
- ✓ क्या मेरा मूड परिस्थितियों के अनुसार बदलता है?
- ✓ क्या मैं हर जगह किसी चीज़ से बंधा हुआ हूँ?

🌟 इस श्लोक से जीवन की सीख:

- ✓ स्थिर बुद्धि का अर्थ है — हर स्थिति में समान रहना।
- ✓ प्रशंसा या निंदा — दोनों को सम्भाव से देखना योग है।
- ✓ जो व्यक्ति संसार से जुड़ा नहीं, वही भीतर से मुक्त होता है।

श्लोक 2.58

संस्कृत श्लोकः:

यदा संहरते चायं कूर्मोऽज्ञानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ 58 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को चारों ओर से समेट लेता है,
उसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी इंद्रियों को उनके विषयों से हटा लेता है, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) "कूर्मोऽज्ञानीव" – कछुए की तरह इंद्रिय नियंत्रण

- कछुआ जब खतरा देखता है तो अपने सभी अंग (पैर, सिर) अंदर खींच लेता है।
- वैसे ही एक स्थितप्रज्ञ व्यक्ति जब भी विकार या विषय का आकर्षण देखता है (जैसे — स्वाद, रूप, स्पर्श, आदि),
वह अपनी इंद्रियों को तुरंत नियंत्रित कर लेता है।

कछुआ दिखता है निष्क्रिय, पर भीतर पूरी जागरूकता होती है।

वही गुण एक स्थिर-बुद्धि वाले योगी में होता है।

👉 2) "इन्द्रियाणी इन्द्रियार्थेभ्यः" – इंद्रियों को विषयों से रोकना

- इंद्रियाँ = ऊँख, कान, जीभ, त्वचा, नाक — जो दुनिया का अनुभव कराती हैं।
- इंद्रियार्थ = इनके विषय — रूप, रस, गंध, स्पर्श, ध्वनि।

सामान्य व्यक्ति इन विषयों में उलझ जाता है — जैसे स्वादिष्ट खाना देखकर कंटोल खो देना।

लेकिन स्थितप्रज्ञ व्यक्ति जानता है कि ये विषय क्षणिक हैं और मोह पैदा करते हैं।

👉 3) "संहरते चायं" – स्वेच्छा से नियंत्रण

- यहाँ "संहरते" का मतलब है — इच्छा से हटाना, जब समय हो।
- यह कोई ज़बरदस्ती नहीं है — बल्कि बुद्धि की जागरूकता से लिया गया संतुलित निर्णय है।

| जैसे — कोई व्यक्ति सिनेमा देखना चाहता है, लेकिन उसे सुबह ध्यान करना है।

| तो वह मोह में बहने के बजाय अपनी इंद्रियों को वापस खींच लेता है।

📌 उदाहरण:

एक व्यक्ति मिठाई बहुत पसंद करता है। सामने गुलाब जामुन है।

लेकिन उसे पता है कि वह डायबिटिक है।

अब वो दो विकल्पों के बीच है:

1) स्वाद (इंद्रिय सुख)

2) स्वास्थ्य (दीर्घकालिक शांति)

स्थितप्रज्ञ व्यक्ति मिठाई के आकर्षण से इंद्रियों को हटा लेता है, और बुद्धि से निर्णय करता है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मेरी इंद्रियाँ (जैसे जीभ, आंख, कान) मुझ पर हावी हैं?
- ✓ क्या मैं क्षणिक सुख के लिए दीर्घकालिक शांति खो देता हूँ?
- ✓ क्या मैं अपनी इच्छाओं को कछुए की तरह भीतर खींच पाता हूँ?

🌟 इस श्लोक से जीवन की सीख:

- ✓ जो व्यक्ति इंद्रियों पर नियंत्रण रखता है, वही भीतर स्थिर हो सकता है।
- ✓ मौन रहना ही संयम नहीं है — विषयों को जानकर उनसे सावधानी से दूर रहना ही सच्चा संयम है।
- ✓ आकर्षणों से बचने के लिए कछुए जैसी सजगता जरूरी है।

श्लोक 2.59

■ संस्कृत श्लोकः

यततो हि तं प्राप्नोति पूर्णमवाप्तकामम् ।
काम्यं स्वभावनियतं वशं याति च येनैकम् ॥ 59 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

जो मनुष्य पूर्णतया अपने कामनाओं को वश में कर लेता है,
और जो अपनी मनःस्थिती को स्वभावतः नियन्त्रित कर पाता है, वही पूर्ण सुख को प्राप्त होता है।

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) “पूर्णमवाप्तकामम्” – पूर्ण इच्छाओं का नियंत्रण

- यह श्लोक कहता है कि जो व्यक्ति अपने सभी इच्छाओं और लालसाओं पर विजय प्राप्त करता है, वह वास्तव में पूर्ण सुख (आनंद) को प्राप्त करता है।

केवल इंद्रियों को रोकना (जैसे कछुए की तरह) पहली सीढ़ी है,
लेकिन मन के अंदर की लालसा को वश में करना दूसरी और गहरी सीढ़ी है।

👉 2) “काम्यं स्वभावनियतं” – स्वाभाविक नियंत्रण

- इसका मतलब है कि संयम कोई ज़बरदस्ती या कठोर अनुशासन नहीं, बल्कि मन का स्वाभाविक और सहज नियंत्रण होना चाहिए।
- जब मन स्वाभाविक रूप से नियन्त्रित हो जाता है, तब व्यक्ति का मन बहुत शांति और स्थिरता का अनुभव करता है।

👉 3) “वशं याति च येनैकम्” – एकता में लीन होना

- यह वाक्यांश बताता है कि संयमित व्यक्ति मन की सारी इच्छाओं को एक सूत्र में बांध कर नियंत्रण करता है।
- वह अपने मन को विभिन्न इच्छाओं से मुक्त कर एकाग्र करता है।

उदाहरणः

कल्पना करें एक विद्यार्थी जो पढ़ाई के समय मोबाइल गेम खेलने की इच्छा रखता है।
केवल मोबाइल को दूर रखना (इंद्रिय संयम) पर्याप्त नहीं,
उसे मन की उस लालसा को भी पूरी तरह वश में करना होगा, ताकि मन पढ़ाई में लगा
रहे।
यही पूर्ण संयम है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मैं केवल बाहरी वस्तुओं से दूर रहकर संयम करता हूँ?
- ✓ क्या मेरा मन भी पूरी तरह संयमित है?
- ✓ क्या मेरी इच्छाएँ और लालसाएँ मुझ पर हावी नहीं हैं?
- ✓ क्या मेरा मन स्वाभाविक रूप से नियंत्रित होता है, या ज़बरदस्ती नियंत्रित करता हूँ?

इस श्लोक से जीवन की सीखः

- ✓ सच्चा संयम बाहरी नहीं, आंतरिक होता है।
- ✓ मन की इच्छाओं पर विजय पाने वाला ही जीवन में स्थिर और सुखी होता है।
- ✓ वश में मन लाना कठिन है, लेकिन वही मोक्ष और शांति का मार्ग है।

श्लोक 2.60

संस्कृत श्लोकः

यततो हि गीतं चित्तमात्मन्येव वशं नयेत् ।
अन्यथा सांसृते पश्यमानसुखमवाप्नोति ॥ 60 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

जो व्यक्ति अपने मन को अपने ही वश में कर लेता है,

वह संसार के सुखों का अनुभव किए बिना ही शांति प्राप्त करता है।

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) "चित्तमात्मन्येव वशं नयेत्" – मन को आत्मा के नियंत्रण में लाना

- मन (चित्त) को अपने स्वामी यानी आत्मा के नियंत्रण में लाना बहुत महत्वपूर्ण है।
 - आत्मा स्थिर और अविचल होती है, जबकि मन हमेशा आकर्षण और विकर्षण में रहता है।
 - जो व्यक्ति अपने मन को नियंत्रित कर आत्मा के अनुसार चलाता है, वह सच्चे सुख की अनुभूति करता है।
-

👉 2) "अन्यथा सांसृते" – अन्यथा, सांसारिक सुखों में उलझना

- यदि मन नियंत्रित न हो तो वह संसार के विषयों और सुखों में फंस जाता है।
 - ये सुख क्षणिक, अस्थायी और छाया मात्र हैं, जो अंततः दुःख में बदल जाते हैं।
-

👉 3) "पश्य मामसुखमवाप्नोति" – सांसारिक सुखों का अनुभव

- जब मन इंद्रियों के वश में होता है, तो व्यक्ति सांसारिक सुखों के पीछे भागता रहता है,
 - लेकिन वह **सच्चा आनंद नहीं पा सकता।**
-

📌 उदाहरण:

एक व्यक्ति जब अपने क्रोध, लालसा, और भय को नियंत्रित कर लेता है, तो वह आंतरिक शांति का अनुभव करता है।

पर यदि मन इच्छाओं के पीछे भागता रहे, तो वह मानसिक अशांति और तनाव में रहता है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मेरा मन मेरे नियंत्रण में है या वह बाहरी वस्तुओं का गुलाम है?
 - ✓ क्या मैं अपने मन को आत्मा के अनुसार दिशा दे रहा हूँ?
 - ✓ क्या मैं सांसारिक सुखों के पीछे भागकर अपनी आंतरिक शांति खो रहा हूँ?
-

इस श्लोक से जीवन की सीखः

-  मन को आत्मा के नियंत्रण में लाना जीवन की सबसे बड़ी सफलता है।
-  जो मन को नियंत्रित करता है, वह बिना सांसारिक वस्तुओं के भी आनंदित रहता है।
-  मन की आजादी से ही असली शांति मिलती है।

श्लोक 2.61

संस्कृत श्लोकः

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामाक्रोधोऽभिजायते ॥ 61 ॥

हिंदी अनुवादः

जो मनुष्य विषयों का ध्यान करता है, उससे आसक्ति उत्पन्न होती है।
आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है, और कामना से क्रोध उत्पन्न होता है।

गहरी व्याख्या:

1) "ध्यायतो विषयान्पुंसः" – विषयों का मनन

- जब हम अपनी इंद्रियों से जुड़े बाहरी विषयों के बारे में बार-बार सोचते हैं,
- जैसे कोई वस्तु, व्यक्ति, स्थिति या आनंद, तो वह विषय हमारे मन में स्थायी रूप से बस जाता है।

2) "सङ्गस्तेषूपजायते" – आसक्ति का जन्म

- इस निरंतर मनन से हमारे मन में उस विषय के प्रति संग, यानी लगाव या आसक्ति पैदा होती है।
- यह आसक्ति धीरे-धीरे व्यक्ति को विषयों का गुलाम बना देती है।

3) "सङ्गात्सञ्जायते कामः" – आसक्ति से कामना उत्पन्न होना

- जब लगाव बढ़ता है, तो उसके पीछे कामना (**इच्छा**) जन्म लेती है।
- यह कामना व्यक्ति को और अधिक लालची, अधीर और असंतुष्ट बना देती है।

👉 4) "कामाक्रोधोऽभिजायते" – कामना से क्रोध उत्पन्न होना

- जब हमारी कोई कामना पूरी नहीं होती, तो उससे क्रोध और असंतोष उत्पन्न होता है।
- क्रोध मनुष्य के लिए हानिकारक होता है और उसे अपने रास्ते से भटका देता है।

📌 उदाहरण:

मान लीजिए कोई व्यक्ति बार-बार महंगे मोबाइल का सोचता रहता है (विषय का ध्यान),

वह उस मोबाइल के लिए बहुत आसक्त हो जाता है (संग),

फिर उसकी इच्छा होती है कि उसे तुरंत मिल जाए (कामना),

और जब वह मोबाइल नहीं मिलता तो वह गुस्सा होने लगता है (क्रोध)।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मैं बार-बार किसी विषय के बारे में सोचकर अपने मन में आसक्ति बढ़ा रहा हूँ?
- ✓ क्या मेरी इच्छाएँ मुझे क्रोध और तनाव की ओर ले जा रही हैं?
- ✓ क्या मैं अपने मन को विषयों से दूर रख पाता हूँ या उससे बहुत जुड़ा हुआ हूँ?

⭐ इस श्लोक से जीवन की सीख:

- ✓ मन को बार-बार विषयों का ध्यान करने से बचाना चाहिए।
- ✓ आसक्ति और कामना ही क्रोध का कारण हैं, इसलिए इन्हें नियंत्रित करना जरूरी है।
- ✓ क्रोध से जीवन में अशांति और पाप बढ़ता है, जो हमें सुख और शांति से दूर ले जाता है।

श्लोक 2.62

画卷 संस्कृत श्लोक:

कामसंकल्पप्रभोत्वारमद्विर्विमोहयत्यात्मनम् ।

तं मनोरथमस्मृत्य धृतिरेकापराधिनीम् ॥ 62 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

इच्छा और वासनाओं के प्रभाव से मनुष्य स्वयं को भ्रमित कर लेता है।

अपनी ही इच्छाओं को याद करके वह अपनी एकाग्रता खो देता है।

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) "कामसंकल्पप्रभोत्त्वारम्" – इच्छाओं और योजनाओं की उत्पत्ति

- जब मन में किसी वस्तु या विषय की इच्छा जागती है, तो वह लगातार मन को व्यस्त रखती है।
- ये इच्छाएँ मन के स्वामी बन जाती हैं और उसकी शक्ति को बढ़ा देती हैं।

👉 2) "अद्विर्विमोहयत्यात्मनम्" – स्वयं को भ्रमित करना

- इच्छाओं के प्रभाव से व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप से दूर हो जाता है।
- वह मन के भ्रम में फँस जाता है और सही निर्णय लेने में असमर्थ हो जाता है।

👉 3) "तं मनोरथमस्मृत्य" – अपनी इच्छाओं को याद करना

- बार-बार अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को याद करने से,
- मन की एकाग्रता टूट जाती है, और व्यक्ति अस्थिर हो जाता है।

👉 4) "धृतिरेकापराधिनीम्" – अपनी दृढ़ता और धैर्य का अपहरण

- इससे उसकी धैर्य और संकल्प शक्ति कमजोर पड़ जाती है,
 - और वह आसानी से भ्रमित और विचलित हो जाता है।
-

📌 उदाहरण:

किसी विद्यार्थी को मान लीजिए कि वह पढ़ाई के बीच बार-बार अपने मन में यह सोचता रहता है कि "मुझे खेलना है" या "मुझे टीवी देखना है", वह अपनी इच्छाओं के चक्रव्यूह में फंस जाता है, जिससे उसकी पढ़ाई में मन नहीं लगता और उसकी एकाग्रता टूट जाती है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मेरी इच्छाएं मुझे भ्रमित कर रही हैं?
 - ✓ क्या मैं अपनी इच्छाओं के चक्रव्यूह में फँसकर अपना लक्ष्य भूल रहा हूँ?
 - ✓ क्या मेरी मानसिक एकाग्रता कमजोर हो रही है?
 - ✓ क्या मैं अपने मन को नियंत्रित कर सकता हूँ?
-

🌟 इस श्लोक से जीवन की सीख:

- ✓ इच्छाओं के प्रभाव में आकर मन को भ्रमित नहीं करना चाहिए।
- ✓ धैर्य और एकाग्रता बनाए रखना जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है।
- ✓ मन के भ्रम से बचकर अपने लक्ष्यों पर स्थिर रहना चाहिए।

श्लोक 2.63

॥ संस्कृत श्लोक:

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ॥ 63 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

हे कौन्तेय (अर्जुन), अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन को नियंत्रित किया जाता है।

जो मनुष्य द्वन्द्वों (विरोधाभासों) से परे होकर स्थिर रहता है, वह न द्वेष करता है और न कामना रखता है।

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) "अभ्यासेन" – नियमित अभ्यास से

- मन को नियंत्रित करने के लिए लगातार अभ्यास करना आवश्यक है।
- यह अभ्यास मन की आदतों, विचारों और इंद्रिय नियंत्रण का होता है।

👉 2) "वैराग्येण" – आसक्ति और मोह का त्याग करके

- साथ ही, मन को विषयों से वैराग्य (असक्ति) भी जरूरी है।

- बिना मोह के, मन स्थिर और संतुलित रहता है।

👉 3) “निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो” – द्वंद्वों से मुक्त और सदा सत्त्व में स्थित

- जो मनुष्य द्वंद्वों (जैसे सुख-दुख, प्रेम-घृणा) से परे होता है,
- वह सत्त्वगुण में स्थिर रहता है, यानी उसकी मानसिकता शुद्ध, स्थिर और शांत रहती है।

👉 4) “न द्वेष्टि न काङ्क्षति” – न नफरत करता है न लालसा रखता है

- ऐसा व्यक्ति न किसी से द्वेष करता है, न किसी वस्तु की लालसा रखता है।
- वह सुख और शांति के स्थायी स्रोत को प्राप्त करता है।

📌 उदाहरण:

एक योगी या साधक जो रोज़ ध्यान और आत्म-अनुशासन करता है,
वह मन की हर तरह की इच्छा और द्वेष से ऊपर उठ जाता है।
परिणामस्वरूप वह निरंतर शांति और समत्व की अवस्था में रहता है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मैं अपने मन को नियमित अध्यास से नियंत्रित कर रहा हूँ?
- ✓ क्या मैंने किसी विषय या वस्तु से वैराग्य (असक्ति) प्राप्त किया है?
- ✓ क्या मैं अपने मन को द्वेष और कामना से मुक्त रख पा रहा हूँ?
- ✓ क्या मैं अपने भावों में स्थिर और शान्त हूँ?

⭐ इस श्लोक से जीवन की सीख:

- ✓ मन को नियंत्रित करने के लिए अध्यास और वैराग्य जरूरी हैं।
- ✓ द्वंद्वों से ऊपर उठकर शांति और स्थिरता प्राप्त करनी चाहिए।
- ✓ नफरत और लालसा दोनों ही मानसिक अशांति के कारण हैं, इन्हें त्यागना चाहिए।
- ✓ मन की शांति और संतुलन ही सच्ची शक्ति है।

श्लोक 2.64

संस्कृत श्लोकः:

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयेन्द्रियैः व्यवस्थितैः ।
इन्द्रियार्थीर्जितात्मना आत्मनं त्यक्त्वा विषयं मित्रम् ॥ 64 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

जो व्यक्ति इंद्रियों को विषयों से अलग रखकर, राग (लगाव) और द्वेष (घृणा) से मुक्त होकर, आत्मा को नियंत्रित करता है,

वह अपने मन को छोड़कर इंद्रियों को उनके विषयों का मित्र (नियंत्रक) बना लेता है।

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) "रागद्वेषवियुक्तैः" – लगाव और द्वेष से मुक्त

- मनुष्य के मन में दो मुख्य भाव होते हैं – राग (लगाव) और द्वेष (नफरत/घृणा)।
- ये भाव मन को अशांत और भ्रमित करते हैं।
- जब कोई व्यक्ति इन दोनों से मुक्त हो जाता है, तो उसका मन शांत और स्थिर होता है।

👉 2) "विषयेन्द्रियैः व्यवस्थितैः" – इंद्रियां विषयों में लगी हुई

- इंद्रियों जैसे आँखें, कान, नाक, जीभ, और त्वचा, ये सभी बाहर की वस्तुओं या विषयों से जुड़ी होती हैं।
- साधारण मनुष्य के लिए ये इंद्रियों विषयों में डूब जाती हैं, जो मन और आत्मा को विचलित करती हैं।

👉 3) "इन्द्रियार्थीर्जितात्मना" – आत्मा द्वारा इंद्रियों को वश में करना

- वास्तविक ज्ञानी व्यक्ति अपने मन और आत्मा की शक्ति से इंद्रियों को नियंत्रित करता है।
- वह इंद्रियों को उनके विषयों का दास नहीं बनने देता, बल्कि उनके उपयोग को नियंत्रित करता है।
- जैसे एक गुरु अपने शिष्यों को सही दिशा देता है, वैसे ही आत्मा इंद्रियों को सही मार्ग पर रखती है।

👉 4) "आत्मनं त्यक्त्वा विषयं मित्रम्" – आत्मा को छोड़कर विषय को मित्र बनाना

- यहाँ 'आत्मनं त्यक्त्वा' का अर्थ है कि व्यक्ति अपने मन को विषयों की तरफ आकर्षित नहीं करता।
- 'विषयं मित्रम्' का मतलब है कि विषय उसके लिए शत्रु नहीं, बल्कि मित्र बन जाते हैं।

- अर्थात्, विषयों के प्रति न कोई आसक्ति होती है, न कोई द्वेष। वह उनसे संतुलित व्यवहार करता है।

उदाहरणः

कल्पना कीजिए एक राजकुमार जिसके पास बहुमूल्य खजाना है, लेकिन वह उस खजाने का इतना मोह नहीं रखता कि उसका मन विचलित हो। वह खजाने का उपयोग बुद्धिमानी से करता है, न कि उसकी लालसा में फँसा रहता है। ठीक उसी तरह, ज्ञानी व्यक्ति इंद्रियों के विषयों को नियंत्रित करता है, उन्हें अपने मन का मित्र बनाता है, न कि गुलाम।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मैं अपनी इंद्रियों को नियंत्रित कर पा रहा हूँ या वे मेरे मन को नियंत्रित करती हैं?
- ✓ क्या मैं अपनी इच्छाओं और नफरत से मुक्त होकर विषयों का मित्र बन सकता हूँ?
- ✓ क्या मेरे मन में विषयों के प्रति कोई अंधी आसक्ति या घृणा तो नहीं है?
- ✓ क्या मैं अपने अंदर स्थिरता और शांति बनाए रख पा रहा हूँ?

इस श्लोक से जीवन की सीखः

- ✓ इंद्रियों को नियंत्रित करना आत्मा की महानता है।
- ✓ राग-द्वेष से ऊपर उठकर विषयों से संतुलित व्यवहार करना चाहिए।
- ✓ जब हम विषयों के गुलाम नहीं रहते, तब वे हमारे मित्र बनते हैं।
- ✓ मन और इंद्रियों पर नियंत्रण पाने वाला ही सच्चा ज्ञानी और शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है।

श्लोक 2.65

संस्कृत श्लोकः

असरससुविरक्तस्य विषयेन्द्रियस्य वारणि ।
प्रज्ञा प्रतिष्ठिता हीनोऽभिजातस्य तु सीमिताः ॥ 65 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

जिस मनुष्य के इंद्रिय विषयों में आसक्ति नहीं होती, जो इच्छाओं से विरक्त होता है, उसकी बुद्धि (प्रज्ञा) स्थिर और अचल होती है।

परन्तु जिस ज्ञानी व्यक्ति की बुद्धि (प्रज्ञा) कमज़ोर या अस्थिर होती है, वह श्रेष्ठता और महानता से दूर होता है।

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) “असरसस्विरक्तस्य” – जिस व्यक्ति के मन में आसक्ति नहीं है

- ‘असरसः’ का अर्थ है ‘जो मन में रस या आसक्ति नहीं रखता।’
- ऐसे व्यक्ति की इंद्रियाँ और मन विषयों से मुक्त और विरक्त होते हैं।
- विरक्ति का मतलब है ‘लगाव और मोह से मुक्त होना।’

👉 2) “विषयेन्द्रियस्य वारणि” – विषयों और इंद्रियों का संयम

- उस व्यक्ति के लिए इंद्रियाँ अपने विषयों का नियंत्रण करती हैं।
- वह इंद्रियों और विषयों के बीच संतुलन बनाए रखता है।

👉 3) “प्रज्ञा प्रतिष्ठिता” – उसकी बुद्धि (ज्ञान) स्थिर रहती है

- विरक्त और संयमित मनुष्य की बुद्धि स्थिर, अडिग और स्पष्ट होती है।
- ऐसे व्यक्ति के विचार और निर्णय स्पष्ट और सही होते हैं।

👉 4) “हीनोऽभिजातस्य तु सीमिताः” – जो ज्ञानी की बुद्धि कमज़ोर हो, वह सीमित है

- अगर कोई ज्ञानी बुद्धि में स्थिरता नहीं रख पाता, वह मानसिक रूप से कमज़ोर और सीमित होता है।
- उसकी समझ और क्षमता कम हो जाती है, जिससे वह उच्च ज्ञान और योग की श्रेष्ठता से दूर रहता है।

📌 उदाहरण:

सोचिए एक दर्पण जो धूल से भर गया हो, उसमें चित्र अस्पष्ट दिखता है।

जैसे धूल साफ करने पर दर्पण स्पष्ट चित्र दिखाता है,

वैसे ही जो मन इच्छाओं और आसक्ति से मुक्त होता है, उसकी बुद्धि साफ और स्थिर होती है।

| यदि मन में मोह हो, तो बुद्धि भ्रमित और कमज़ोर हो जाती है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मेरा मन और बुद्धि इच्छाओं से मुक्त और स्थिर है?
 - ✓ क्या मैं विषयों और इंद्रियों के बीच संतुलन बनाए रख पा रहा हूँ?
 - ✓ क्या मेरी समझ निर्णय लेने में स्पष्ट और अंडिग है?
 - ✓ क्या मेरी बुद्धि में स्थिरता कमज़ोर पड़ रही है? अगर हाँ, तो मैं इसे कैसे सुधार सकता हूँ?
-

★ इस श्लोक से जीवन की सीख:

- ✓ आसक्ति और मोह से मुक्त मन बुद्धि को स्थिर और मजबूत बनाता है।
- ✓ संयमित मनुष्य का निर्णय और ज्ञान स्थिर और सटीक होता है।
- ✓ अस्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति अपने लक्ष्य से दूर रहता है।
- ✓ हमें अपने मन और बुद्धि को विरक्ति और संयम के माध्यम से मजबूत बनाना चाहिए।

श्लोक 2.66

संस्कृत श्लोक:

अर्जुन उवाच ।
असंशयं मया ते प्रियम् एवेदं वक्ष्यते ।
सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ॥ 66 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

अर्जुन बोले – निसंदेह हे कृष्ण, जो तुम कह रहे हो वह मुझे अत्यंत प्रिय है। कृपया मैं तुमसे यह जानना चाहता हूँ कि सुख-दुख, लाभ-हानि और जय-पराजय को समान दृष्टि से देखने वाला मनुष्य कैसा होता है?

गहरी व्याख्या:

👉 1) अर्जुन का प्रश्न

- अर्जुन यहाँ भगवान श्रीकृष्ण से पूछ रहा है कि जो मनुष्य सुख-दुख, लाभ-हानि, और जीत-हार जैसी परस्थितियों में समान भाव रखता है, उसका मन कैसा होता है?
- अर्जुन को यह समझना है कि ऐसी स्थिति में मनुष्य की मानसिकता और व्यवहार कैसा होता है।
- यह प्रश्न आत्म-ज्ञान की गहराई में जाने का एक प्रयास है।

👉 2) "सुखदुःख समे कृत्वा" – सुख और दुःख को समान समझना

- जीवन में सुख और दुःख दोनों आते रहते हैं।
- जो व्यक्ति दोनों को समान रूप से देखता है, वह अपने मन को स्थिर रख पाता है।
- यह समानता एक प्रकार की मानसिक स्थिरता और समता (इक्वैनिमिटी) दर्शाती है।

👉 3) "लाभालाभौ जयाजयौ" – लाभ और हानि, विजय और पराजय को भी समान देखना

- किसी कार्य में सफलता या असफलता हो सकती है।
- इसे भी जो व्यक्ति न ज्यादा महत्व देता है और न इसे लेकर चिन्तित होता है।
- इसका मतलब है कि वह व्यक्ति फल की आसक्ति से मुक्त होता है।

👉 4) मनुष्य का मानसिक स्वभाव – समभाव (इक्वैनिमिटी)

- समभाव अर्थात् मन की स्थिरता और संतुलन।
- जो व्यक्ति सुख-दुख या जीत-हार में न झूकता है, वह कर्म में निपुण होता है।
- ऐसा मनुष्य योगी कहलाता है क्योंकि उसने अपने मन को संतुलित कर लिया है।

📌 उदाहरण:

सोचिए एक नाविक जो समुद्र में उछलते-झूलते लहरों के बीच नाव चला रहा है।

अगर वह हर लहर को देखकर घबराए या खुश हो जाए, तो नाव डूब सकती है।

लेकिन यदि वह शांत मन से लहरों को पार करता है, तो वह सुरक्षित और सफल होता है।

ठीक उसी प्रकार, जो व्यक्ति जीवन की लहरों (सुख-दुःख, लाभ-हानि) में संतुलन बनाए रखता है, वह सफल और सुखी होता है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मैं सुख-दुख, लाभ-हानि को समान दृष्टि से देख पाता हूँ?
- ✓ क्या मैं जीत और हार में अपनी मानसिक शांति बनाए रख पाता हूँ?
- ✓ क्या मेरी खुशियाँ या उदासी बाहरी घटनाओं पर अधिक निर्भर नहीं होती?
- ✓ क्या मैं फल की चिंता छोड़कर अपने कर्म पर ध्यान केंद्रित कर रहा हूँ?

★ इस श्लोक से जीवन की सीख:

- ✓ सुख-दुख, लाभ-हानि, विजय-पराजय को समान दृष्टि से देखना मानसिक स्थिरता का परिचायक है।
- ✓ फल की चिंता छोड़कर कर्म करना ही सच्चा योग है।
- ✓ जो व्यक्ति समझाव रखता है, वह मन की अशांति से दूर रहता है।
- ✓ संतुलित मन वाला व्यक्ति जीवन की कठिनाइयों में भी अडिग रहता है।

श्लोक 2.67

संस्कृत श्लोक:

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।
योगी युज्जीत सततमात्मानं रहसार्थवशः ॥ 67 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

इसलिए हे अर्जुन! तुम योग में लग जाओ क्योंकि योग ही कर्मों में निपुणता (कौशल) है। योगी को हमेशा अपने मन को संयमित रखना चाहिए और वह ध्यान में रहकर अपने मन की गुप्तता को समझता है।

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) "तस्माद् योगाय युज्यस्व" – इसलिए योग में लग जाओ

- कृष्ण अर्जुन को समझा रहे हैं कि जीवन में सफलता और मानसिक शांति पाने के लिए योग (ध्यान, संयम, समझाव) आवश्यक है।
- यहाँ योग का अर्थ केवल आसन या शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि मन, बुद्धि और कर्म का संयोजन है।

👉 2) "योगः कर्मसु कौशलम्" – योग ही कर्मों में कौशल है

- योग का मतलब है कर्म करते हुए भी मन को स्थिर और एकाग्र रखना।
- जब हम अपने कर्मों को बिना आसक्ति और फल की चिंता के, पूरी निपुणता और सतर्कता से करते हैं, तो वह योग कहलाता है।
- कर्म में निपुणता (कौशल) का अर्थ है कि हम अपने कार्यों को समझदारी, अनुशासन और धैर्य से करें।

👉 3) "योगी युज्जीत सततमात्मानं" – योगी को हमेशा आत्मा में मग्न रहना चाहिए

- योगी वह व्यक्ति है जो हमेशा अपने मन को आत्मा के साथ जोड़े रखता है।
- वह अपने अंदर झाँकता है और बाहरी मोह और इच्छाओं से खुद को अलग रखता है।

👉 4) "रहसार्धवशः" – ध्यान और गुप्तता की अवस्था

- यहाँ कहा गया है कि योगी को अपने मन की गुप्त बातें, उसकी इच्छाओं और वृत्तियों को ध्यान में रखकर संयमित करना चाहिए।
- वह मन के रहस्यों को समझने वाला होता है और उन्हें नियंत्रित करता है।

📌 उदाहरणः

मान लीजिए एक कुम्हार मिट्टी से बर्तन बनाता है।

अगर वह बिना ध्यान लगाए, जल्दी-जल्दी काम करे तो बर्तन टूट सकते हैं।

लेकिन यदि वह ध्यान से, धैर्यपूर्वक, पूरी निपुणता से काम करे, तो सुंदर और मजबूत बर्तन बनता है।

ठीक उसी तरह, योगी कर्म करते हुए भी मन को नियंत्रित करता है और अपने कर्मों में दक्ष होता है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मैं अपने कर्म करते समय मन को स्थिर और एकाग्र रख पाता हूँ?
- ✓ क्या मैं फल की चिंता किए बिना अपने कर्तव्य का पालन करता हूँ?
- ✓ क्या मेरा मन बाहरी इच्छाओं और व्याकुलताओं से मुक्त है?

✓ क्या मैं अपने अंदर के मन के रहस्यों को समझने और नियंत्रित करने का प्रयास करता हूँ?

★ इस श्लोक से जीवन की सीख:

- ✓ योग केवल ध्यान और शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि कर्म में दक्षता और मानसिक संयम है।
- ✓ फल की चिंता छोड़कर कर्म करना योग है।
- ✓ जो मन को समझता और नियंत्रित करता है, वही सच्चा योगी है।
- ✓ कर्म में निपुणता से मनुष्य अपने जीवन को सार्थक बना सकता है।

श्लोक 2.68

संस्कृत श्लोक:

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया मृत्युं तीर्त्वति ।
ततो विद्यया युज्यस्व जयद्विद्यया मतं मतम् ॥ 68 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

अज्ञान के कारण मृत्यु को पार करना कठिन है, जबकि ज्ञान से मृत्यु को पार करना संभव है। इसलिए हे अर्जुन, ज्ञान द्वारा अपने आप को संवारो; मेरे अनुसार ज्ञान ही विजय का मार्ग है।

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) “अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा” – अज्ञान से मृत्यु को पार करना

- यहाँ ‘मृत्यु’ का अर्थ केवल शारीरिक मृत्यु से नहीं है, बल्कि जीवन के भय, असहायता, और भौतिक बंधनों से मुक्ति भी है।
- जब मनुष्य अज्ञान में होता है, तो वह भयभीत रहता है, जीवन का सही अर्थ नहीं समझ पाता, और इसलिए वह असली “मृत्यु” यानी अज्ञानता की गिरफ्त से बाहर नहीं निकल पाता।

👉 2) “विद्यया मृत्युं तीर्त्वति” – ज्ञान से मृत्यु को पार करना

- ज्ञान का अर्थ यहाँ आत्मा का ज्ञान, स्वयं का सच्चा स्वरूप जानना है।
- जब मनुष्य अपने सच्चे स्वरूप को जान लेता है, तो वह मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्र से ऊपर उठ जाता है।

- वह भय, दुख और अनिश्चितता से मुक्त हो जाता है।

3) "ततो विद्यया युज्यस्व" – इसलिए ज्ञान द्वारा अपने आप को सज्ज करो

- श्रीकृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि जीवन के सभी भय और बंधनों से मुक्ति पाने के लिए ज्ञान की साधना करो।
- केवल ज्ञान ही मनुष्य को सच्ची स्वतंत्रता दे सकता है।

4) "जयद्विद्यया मतं मतम्" – मेरे अनुसार ज्ञान ही विजय है

- इस श्लोक में भगवान् स्वयं बताते हैं कि सर्वश्रेष्ठ विजय ज्ञान से ही प्राप्त होती है।
- बाहरी युद्धों से ज्यादा महत्वपूर्ण है, अपने अंदर के अज्ञान, भय और अंधकार को हराना।

उदाहरण:

एक अँधेरे कमरे में चलना और बाहर उजाले में चलना – दोनों अनुभव अलग हैं।

अज्ञानता अंधकार की तरह है जो हमें भयभीत करता है।

ज्ञान उस अंधकार को दूर कर उजाले में ले जाता है, जहां हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं और डर मुक्त होते हैं।

इसी प्रकार, ज्ञान से मनुष्य जीवन के भय और मृत्यु के भय को पार कर सकता है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मैं अपने जीवन की वास्तविकता को जानने की कोशिश करता हूँ?
- ✓ क्या मैं अज्ञान के कारण उत्पन्न भय से मुक्त हूँ?
- ✓ क्या मैं अपने अंदर के सच्चे ज्ञान की ओर प्रयासरत हूँ?
- ✓ क्या मैं अपने ज्ञान से जीवन की चुनौतियों को पार कर सकता हूँ?

इस श्लोक से जीवन की सीख:

-  अज्ञान मनुष्य का सबसे बड़ा दुश्मन है।
-  ज्ञान ही हमें भय और मृत्यु के चक्र से मुक्ति देता है।

- अपने जीवन को ज्ञान से सज्ज करना आवश्यक है।
- सच्ची विजय बाहरी युद्धों में नहीं, बल्कि आंतरिक ज्ञान और मुक्ति में है।

श्लोक 2.69

संस्कृत श्लोकः

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ 69 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

जो सभी प्राणियों के लिए द्वेष न करता हो, जो मित्रवत और करुणामय हो, जो किसी का न हो, न किसी पर अहंकार करे, जो सुख-दुःख में समान भाव रखे, और जो क्षमाशील हो — वही सच्चा योगी है।

गहरी व्याख्या:

👉 1) “अद्वेष्टा सर्वभूतानां” – सभी प्राणियों के प्रति द्वेष न करना

- एक योगी के मन में किसी भी जीव के लिए द्वेष या नफरत नहीं होती।
- वह सबके लिए समान और दयालु भाव रखता है।
- यह भाव हमें धृणा, झगड़े और तनाव से दूर रखता है।

👉 2) “मैत्रः करुण एव च” – मित्रवत और करुणामय होना

- योगी का हृदय सबके लिए मित्रता और करुणा से भरा होता है।
- वह दूसरों के सुख-दुख को समझता है और उनकी मदद करने को तत्पर रहता है।

👉 3) “निर्ममो निरहङ्कारः” – न किसी का और न किसी पर अहंकार करना

- ‘निर्मम’ का मतलब है कि योगी किसी का मालिक या स्वामी नहीं होता।
- ‘निरहङ्कार’ का अर्थ है अहंकार से परे होना।
- वह अपने आप को किसी से बड़ा या छोटा नहीं समझता।

👉 4) “समदुःखसुखः” – सुख-दुख में समान भाव रखना

- जीवन में सुख और दुख दोनों आते रहते हैं।
- सच्चा योगी न तो सुख में अत्यधिक खुश होता है, न दुख में डूबता है।
- वह दोनों में समान भाव और संतुलन बनाए रखता है।

5) "क्षमी" – क्षमाशील होना

- वह आसानी से दूसरों की गलतियों को माफ कर देता है।
- उसकी सहनशीलता और धैर्य अपार होता है।

उदाहरण:

जैसे एक पेड़ अपने फल सभी को समान रूप से देता है, चाहे वह अच्छे हों या बुरे, वैसे ही एक योगी सभी जीवों के प्रति प्रेम और करुणा रखता है।
 वह न तो किसी से जलता है, न किसी को नीचा समझता है।
 सुख-दुख की परिस्थिति में वह स्थिर रहता है और दूसरों के दोषों को क्षमा करता है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मैं सभी के प्रति द्वेष या नफरत छोड़ सकता हूँ?
- ✓ क्या मैं दूसरों के लिए मित्रवत और करुणामय हूँ?
- ✓ क्या मेरा अहंकार दूसरों के साथ मेरे संबंधों को प्रभावित करता है?
- ✓ क्या मैं सुख-दुख में संतुलित और स्थिर रहता हूँ?
- ✓ क्या मैं दूसरों की गलतियों को क्षमा करने के लिए तैयार हूँ?

इस श्लोक से जीवन की सीख:

- ✓ सभी के प्रति प्रेम और करुणा रखना योग का मूल है।
- ✓ अहंकार और द्वेष से मुक्ति योगी की निशानी है।
- ✓ सुख-दुख में संतुलन बनाए रखना मानसिक शक्ति को दर्शाता है।
- ✓ क्षमा और सहनशीलता से मन शांत और स्थिर रहता है।

श्लोक 2.70

■ संस्कृत श्लोकः

अपुण्येषु अपि पुण्यं तमेव विद्धि भारत ।
अवाप्य मामुपशान्तिम्शान्तिम्परमां शुभम् ॥ 70 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

हे भारत! जो व्यक्ति अपने पापों और पुण्यों दोनों को पार कर गया, वह मुझ तक पहुंचकर परम शांति (परम शुभ) प्राप्त करता है।

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) “अपुण्येषु अपि पुण्यं” – पापों के बीच भी पुण्य

- यहाँ ‘अपुण्येषु’ का अर्थ है उन लोगों या परिस्थितियों में जहाँ सामान्यतः पाप या अशुद्धि होती है।
- लेकिन जो व्यक्ति अपने अंदर इतना आध्यात्मिक रूप से विकसित हो गया है कि वह पुण्य (पवित्रता, आध्यात्मिकता) का अनुभव करता है, चाहे वह पापों में क्यों न हो।
- इसका मतलब है कि व्यक्ति पाप और पुण्य के द्वैत से ऊपर उठ चुका होता है।

👉 2) “तमेव विद्धि भारत” – हे भारत, इसे जानो

- श्रीकृष्ण अर्जुन को समझा रहे हैं कि सच्चा योगी पाप-पुण्य के बंधनों से परे होता है।
- वह अपने आप को उन द्वैतों से मुक्त कर लेता है।

👉 3) “अवाप्य मामुपशान्तिम्” – मुझ तक पहुंचकर शांति प्राप्त करना

- जो इस स्थिति में पहुंचता है, वह श्रीकृष्ण अर्थात् परमात्मा के पास पहुंचता है।
- वहाँ उसे अंतिम शांति और पूर्ण सुख प्राप्त होता है।

👉 4) “शान्तिम् परमां शुभम्” – परम शांति और शुभता

- यह शांति सांसारिक सुखों से परे होती है।
- यह आंतरिक शांति, स्थिरता और आनंद है, जो जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त कर देती है।

उदाहरणः

जैसे जल में तेल तैरता है, जो पानी से अलग होता है, वैसे ही एक योगी पाप-पुण्य के द्वैत से ऊपर उठकर शाश्वत शांति में रहता है।

चाहे उसकी बाहरी परिस्थितियाँ कैसी भी हों, उसका मन शांत और स्थिर रहता है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मैं अपने पाप और पुण्य के द्वैत से ऊपर उठ पाया हूँ?
- ✓ क्या मुझे जीवन में स्थिर और शांति की अनुभूति होती है?
- ✓ क्या मैं परमात्मा के प्रति अपने प्रेम और भक्ति को समझता हूँ?
- ✓ क्या मैं बाहरी परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना अपनी आंतरिक शांति बनाए रख सकता हूँ?

इस श्लोक से जीवन की सीखः

- ✓ सच्चा आध्यात्मिक व्यक्ति द्वैत (पाप-पुण्य) से ऊपर उठता है।
- ✓ परम शांति केवल तभी मिलती है जब हम परमात्मा के सान्निध्य में पहुंचते हैं।
- ✓ बाहरी परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी हों, आंतरिक शांति आवश्यक है।
- ✓ शांति ही सच्ची सफलता और शुभता है।

श्लोक 2.70

संस्कृत श्लोकः

अपुण्येषु अपि पुण्यं तमेव विद्धि भारत ।
अवाप्य मामुपशान्तिम्शान्तिम्परमां शुभम् ॥ 70 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

हे भारत! जो व्यक्ति अपने पापों और पुण्यों दोनों को पार कर गया, वह मुझ तक पहुंचकर परम शांति (परम शुभ) प्राप्त करता है।

🔍 गहरी व्याख्या:

👉 1) "अपुण्येषु अपि पुण्यं" – पापों के बीच भी पुण्य

- यहाँ 'अपुण्येषु' का अर्थ है उन लोगों या परिस्थितियों में जहाँ सामान्यतः पाप या अशुद्धि होती है।
- लेकिन जो व्यक्ति अपने अंदर इतना आध्यात्मिक रूप से विकसित हो गया है कि वह पुण्य (पवित्रता, आध्यात्मिकता) का अनुभव करता है, चाहे वह पापों में क्यों न हो।
- इसका मतलब है कि व्यक्ति पाप और पुण्य के द्वैत से ऊपर उठ चुका होता है।

👉 2) "तमेव विद्धि भारत" – हे भारत, इसे जानो

- श्रीकृष्ण अर्जुन को समझा रहे हैं कि सच्चा योगी पाप-पुण्य के बंधनों से परे होता है।
- वह अपने आप को उन द्वैतों से मुक्त कर लेता है।

👉 3) "अवाप्य मामुपशान्तिम्" – मुझ तक पहुंचकर शांति प्राप्त करना

- जो इस स्थिति में पहुंचता है, वह श्रीकृष्ण अर्थात् परमात्मा के पास पहुंचता है।
- वहाँ उसे अंतिम शांति और पूर्ण सुख प्राप्त होता है।

👉 4) "शान्तिम् परमां शुभम्" – परम शांति और शुभता

- यह शांति सांसारिक सुखों से परे होती है।
- यह आंतरिक शांति, स्थिरता और आनंद है, जो जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त कर देती है।

📌 उदाहरण:

जैसे जल में तेल तैरता है, जो पानी से अलग होता है, वैसे ही एक योगी पाप-पुण्य के द्वैत से ऊपर उठकर शाश्वत शांति में रहता है।

चाहे उसकी बाहरी परिस्थितियाँ कैसी भी हों, उसका मन शांत और स्थिर रहता है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मैं अपने पाप और पुण्य के द्वैत से ऊपर उठ पाया हूँ?
- ✓ क्या मुझे जीवन में स्थिर और शांति की अनुभूति होती है?
- ✓ क्या मैं परमात्मा के प्रति अपने प्रेम और भक्ति को समझता हूँ?

✓ क्या मैं बाहरी परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना अपनी आंतरिक शांति बनाए रख सकता हूँ?

★ इस श्लोक से जीवन की सीख:

- ✓ सच्चा आध्यात्मिक व्यक्ति द्वैत (पाप-पुण्य) से ऊपर उठता है।
- ✓ परम शांति केवल तभी मिलती है जब हम परमात्मा के सान्निध्य में पहुंचते हैं।
- ✓ बाहरी परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी हों, आंतरिक शांति आवश्यक है।
- ✓ शांति ही सच्ची सफलता और शुभता है।

श्लोक 2.71

■ संस्कृत श्लोक:

वित्तेश्वरोऽपि भगवान् सत्त्वस्थो मद्भक्तः कथञ्चन |
मर्यपितमनोबुद्धिममेभ्यः पार्थ निबोधत ॥ 71 ॥

◆ हिंदी अनुवाद:

यहाँ तक कि इस संसार के स्वामी भी, जो मेरे भक्त हैं और सत्त्वगुण से संपन्न हैं, मन और बुद्धि मुझमें अर्पित करते हैं। हे पार्थ, तुम भी मुझमें अपनी बुद्धि और मन को समर्पित करो और मुझसे ज्ञाना प्राप्त करो।

○ गहरी व्याख्या:

1) “वित्तेश्वरोऽपि भगवान्” – भगवान जो इस संसार के स्वामी हैं

- ‘वित्तेश्वर’ का अर्थ है ‘संसार का स्वामी’।
- यहां दर्शाया गया है कि चाहे कोई कितना भी महत्वपूर्ण क्यों न हो, सभी कुछ परमेश्वर के नियंत्रण में हैं।

2) “सत्त्वस्थो” – सत्त्वगुण से युक्त होना

- सत्त्वगुण का मतलब है शुद्धता, ज्ञान, और अच्छाई।
- भगवान के भक्त जो इस गुण से युक्त होते हैं, वे आध्यात्मिक रूप से प्रगाढ़ होते हैं।

3) “मद्भक्तः” – भगवान के भक्त

- ये वे लोग हैं जो भगवान की भक्ति में लीन रहते हैं।
- उनका मन, बुद्धि और कर्म सब भगवान को समर्पित होता है।

👉 4) "मर्यादितमनोबुद्धिः" – मन और बुद्धि मुझमें समर्पित करना

- श्रीकृष्ण यहाँ अर्जुन से कह रहे हैं कि वे भी अपनी बुद्धि और मन को भगवान को समर्पित करें।
- जब हम मन और बुद्धि भगवान को अर्पित कर देते हैं, तब हम सही मार्ग पर चल पाते हैं।

👉 5) "मामेभ्यः पार्थ निबोधत" – मुझसे जानो, हे पार्थ

- अर्जुन को सलाह दी जा रही है कि वह अपने गुरु (श्रीकृष्ण) से ज्ञान प्राप्त करे।
- यह सिखाता है कि वास्तविक ज्ञान गुरु से ही प्राप्त होता है।

📌 उदाहरण:

जैसे एक राजा के सेवक पूरी निष्ठा से अपने राजा की आज्ञा मानते हैं और अपना मन तथा बुद्धि उसी के आदेश के अनुसार लगाते हैं, वैसे ही एक भक्त भगवान को अपना मन और बुद्धि अर्पित करता है।

इससे उसकी बुद्धि शुद्ध होती है और वह सही निर्णय ले पाता है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मेरा मन और बुद्धि ईश्वर को समर्पित है?
- ✓ क्या मैं अपने कर्मों में पूरी निष्ठा और भक्ति रखता हूँ?
- ✓ क्या मैं अपने गुरु या आध्यात्मिक मार्गदर्शक से ज्ञान ग्रहण करने के लिए तत्पर हूँ?
- ✓ क्या मैं भगवान की भक्ति में सत्त्वगुण विकसित कर पा रहा हूँ?

⭐ इस श्लोक से जीवन की सीख:

- ✓ सच्चा आध्यात्मिक मार्ग मन और बुद्धि को ईश्वर को अर्पित करने से शुरू होता है।
- ✓ हम चाहे जितने भी शक्तिशाली हों, अंतिम नियंत्रण ईश्वर के हाथ में होता है।
- ✓ गुरु से ज्ञान प्राप्ति जीवन में सही दिशा दिखाती है।
- ✓ सत्त्वगुण और भक्ति से मन स्थिर और शुद्ध होता है।

श्लोक 2.72

संस्कृत श्लोकः

अव्यक्ता सदृशी तमोऽहम् अन्तर्यामी तथात्मानम् ।
ममनात्मानं विजानीतो नाभिजानाति वित्तमिति ॥ 72 ॥

◆ हिंदी अनुवादः

मैं उस अव्यक्त (जिसे समझा नहीं जा सकता) तम (अंधकार) के समान आत्मा को जानता हूँ, जो हृदय में विराजमान है। जो मेरा आत्मा रूप जानता है, वह धन को नहीं समझता।

गहरी व्याख्या:

👉 1) “अव्यक्ता सदृशी तमः” – अज्ञात और अस्पष्ट अंधकार समान

- ‘अव्यक्त’ का अर्थ है जिसे इन्द्रियों से जाना या समझा न जा सके।
- आत्मा भी ऐसी है — न तो इसका रूप देखा जा सकता है, न इसका विनाश।
- इसे ‘तम’ अर्थात् अंधकार से तुलनात्मक रूप से बताया गया है, क्योंकि दोनों को सीधे देख पाना संभव नहीं।

👉 2) “अन्तर्यामी तथात्मानम्” – हृदय में स्थित अंतर्निहित आत्मा

- आत्मा शरीर के भीतर है, उसे ‘अन्तर्यामी’ कहा गया है।
- इसका मतलब है कि आत्मा हमारे हृदय में निवास करती है, हमारे अंदर गुप्त है, परंतु सबकुछ जानने वाली है।

👉 3) “ममनात्मानं विजानीत” – जो मेरा रूप जानता है

- श्रीकृष्ण यहाँ अपने आप को आत्मा के रूप में भी समझा रहे हैं।
- जो व्यक्ति इस दिव्य सत्य को जानता है, वह केवल शरीर या सांसारिक वस्तुओं में नहीं फँसता।

👉 4) “नाभिजानाति वित्तमिति” – वह धन को नहीं समझता

- उस आध्यात्मिक ज्ञान वाले के लिए सांसारिक धन, संपत्ति और वस्तुएं महत्वहीन हो जाती हैं।

- क्योंकि उसकी दृष्टि स्थायी और शाश्वत सत्य पर केंद्रित होती है।
-

उदाहरणः

जैसे अंधकार में अंधा व्यक्ति चमकते सोने को नहीं देख पाता, वैसे ही जो व्यक्ति आत्मा की गहराई को समझ जाता है, वह सांसारिक धन को महत्व नहीं देता।
उसकी दृष्टि उस अनंत और अमर सत्य पर होती है जो शरीर से परे है।

◆ हमें अपने आप से क्या पूछना चाहिए?

- ✓ क्या मैं अपने अंदर उस चिरस्थायी आत्मा को जानने की कोशिश करता हूँ?
 - ✓ क्या मैं सांसारिक धन और वस्तुओं को अपने जीवन का अंतिम लक्ष्य मानता हूँ?
 - ✓ क्या मेरा मन स्थिर और गहराई से आध्यात्मिक है?
 - ✓ क्या मैं इस शाश्वत सत्य को जानने के लिए प्रयासरत हूँ?
-

इस श्लोक से जीवन की सीखः

- ✓ आत्मा अदृश्य और अमर है, इसे इन्द्रिय नहीं पकड़ सकते।
- ✓ जो व्यक्ति आत्मा के स्वरूप को समझ जाता है, वह सांसारिक वस्तुओं से बंधन मुक्त हो जाता है।
- ✓ धन-संपत्ति से बंधे रहना अस्थायी है; वास्तविक धन आत्मा का ज्ञान है।
- ✓ आत्मा के ज्ञान से मन की शांति और स्थिरता आती है।